# विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष–१७ मार्च–१९९८ अंक–३

रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

फार्म—४

( नियम ८ देखिए )

# विवेक शिखा


१. प्रकाशन स्थान : छपरा

२. प्रकाशन की आवर्तता : मासिक

३. मुद्रक का नाम : डॉ० केदार नाथ लाभ

४. प्रकाशक का नाम : श्रीमती गंगा देवी
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ
पता—रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर, छपरा
(बिहार)

५. सम्पादक का नाम : डॉ० केदारनाथ लाभ
क्या आप भारत के नागरिक हैं : हाँ
पता— रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा-८४१३०१

६. उन व्यक्तियों के नाम व पता जो समाचार पत्रों के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हों । — श्रीमती गंगा देवी, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

मैं, गंगा देवी, एतद् द्वारा घोषित करती हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं ।

ह०/गंगा देवी
प्रकाशक


## इस अंक में

# परब्रह्म स्तोत्रम्

ॐ नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयाय नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय ।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय ॥१

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ त्वमेकं परं निष्कलं निर्विकल्पम् ॥२

भयानां भयं भीषणं भीषणानां गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियंतृ त्वमेकं परेषां परं रक्षकं रक्षकाणाम् ॥३

परेश प्रभो सर्वरूपाविनाशिन्ननिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्य ।
अचिंत्याक्षर व्यापकाव्यक्ततत्त्व जगद्भासकाधीश पायादपायात् ॥४

तदेकं स्मरामस्तदेकं भजामस्तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्बोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥५

पंचरत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
यः पठेत्प्रयतो भूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥६

---

**भावार्थ**—ॐ हे, सकल संसारके आश्रय, सत्स्वरूप ! तुम्हें नमस्कार है। हे, विश्वरूपात्मक चित्स्वरूप ! तुम्हें नमस्कार है। हे, अद्वैत तत्त्वस्वरूप एवं मुक्तिदाता तुम्हें नमस्कार है। हे, सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म ! तुम्हें नमस्कार है।१

इस संसार में एकमात्र तुम्हीं आश्रयस्थल हो, एकमात्र तुम्हीं वरेण्य हो, एकमात्र तुम्हीं जगत् के कारण और विश्वरूप हो, एकमात्र तुम्हीं संसार के स्रष्टा, पालक और संहारक हो, एकमात्र तुम्हीं सर्वश्रेष्ठ निष्कल एवं निर्विकल्प हो।२

एकमात्र तुम्हीं भयसमूहों के भय, भीषणगणों के मध्य भीषणतम, प्राणियों की गति, पवित्रों के पवित्र, अत्यन्त उच्च पदों से अधिष्ठितों के विधाता, श्रेष्ठों में श्रेष्ठतम एवं रक्षकों के रक्षक हो।३

हे परमेश्वर, प्रभु, विश्वरूप अविनाशी, अनिर्देश्य, समस्त इन्द्रियों के लिए आगम्य, सत्य, अचिन्त्य, अक्षर, व्यापक, अव्यक्त तत्व, जगत्-प्रकाशक अधीश्वर—अनिष्ट होने पर तुम हमलोगों की रक्षा करो।४

उसी अद्वितीय का हम स्मरण करते हैं, उसी अद्वितीय का भजन करते हैं, उसी अद्वितीय, जगत् के साक्षी स्वरूप का हम प्रणाम करते हैं, सत्स्वरूप, निधान, निरालम्ब, परमेश्वर, भवसागर की नाव और आश्रय स्वरूप का हम आश्रय ग्रहण करते हैं।५

जो एकाग्रचित से परब्रह्म परमात्मा के इस पंचरत्न स्तोत्र का पाठ करेंगे, वे ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त करेंगे।६

संस्मरण

# श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज

[ श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के परम उपाध्यक्ष हैं। प्रस्तुत आलेख उनके द्वारा रविवार, १८ दिसम्बर १९९५ को बेलुड़ मठ में संन्यासियों के सम्मेलन में दिये गये व्याख्यायन का मूल पाठ है जो मद्रास से प्रकाशित 'वेदान्त केसरी' के जनवरी १९९८ अंक में मुद्रित हुआ है : व्याख्यायन की महत्ता को ध्यान में रखकर इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवादक हैं— डॉ० केदारनाथ लाभ।]

बन्धुओ,

आज हमलोग अपने प्रेसिडेण्ट महाराज और उनके संदेश से वंचित हैं। हमलोग उनकी अनुपस्थिति की थोड़ी-सी क्षतिपूर्ति श्रीरामकृष्ण के कुछ अंतरंग शिष्यों की चर्चा कर करेंगे जिनसे मिलने और बातें करने के अवसर मुझे उपलब्ध हुए थे तथा जिनसे मैंने प्रेरणाएँ प्राप्त की हैं।

सर्वप्रथम मुझे रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष स्वामी शिवानन्द जी महाराज, जो लोगों में आदर से महापुरुष महाराज के नाम से ख्यात हैं, का स्मरण हो रहा है। मैं केरल राज्य के त्रिस्सुर नगर से दस किलोमीटर दूर त्रिक्कुर नामक गाँव में रहता था। त्रिक्कुर में मेरा घर मनाली नदी के तट पर स्थित है, और मेरे घर के पूरब करीब आधा किलोमीटर दूर एक पहाड़ी पर एक प्राचीन चट्टान की गुफा में शिव का मन्दिर है। उन दिनों मैं त्रिक्कुर से पाँच किलो-मीटर दूर त्रिस्सुर-मार्ग पर स्थित ओल्लुर के उच्च विद्यालय में आठवीं कक्षा में पढ़ता था। मेरे एक सहपाठी ने त्रिस्सुर के विवेकोदयम् हाई स्कूल के पुस्तकालय से एक पुस्तक लायी। 'क्या तुम यह पुस्तक पढ़ना चाहोगे ?'—उसने मुझसे पूछा। बिना जाने हुए कि यह कौन-सी पुस्तक थी, मैंने उत्तर दिया—'हाँ, मैं इसे पढ़ना चाहूँगा।' यह पुस्तक थी श्री'म' लिखित और मद्रास मठ द्वारा प्रकाशित 'द गॉसपेल ऑफ श्रीरामकृष्ण' (श्रीरामकृष्ण वचनामृत)। उसने वह पुस्तक मुझे दी। मैंने इसे पढ़ना शुरू किया। इसने मेरे ध्यान को आबद्ध कर लिया और मैं तब तक नहीं रुका जब तक मैंने अनवरत रूप से एक सौ पृष्ठ नहीं पढ़ डाले। बाद में मैंने संपूर्ण पुस्तक पढ़ी। इसके बाद उस त्रिस्सुर के पुस्तकालय से ठाकुर स्वामीजी विषयक अन्य पुस्तकें आयीं।

यह सन् १९२४ ई० की बात है। मेरी उम्र मात्र साढ़े पन्द्रह वर्ष की थी और मैं रामकृष्ण संघ में सम्मिलित होने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। १९२६ ई० मैं अपनी स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने और अंतिम परीक्षा दे देने के उपरान्त आशुलेखन और टंकण (शॉर्ट हैण्ड एवं टाइप राइटिंग) सीखने के लिए मैं त्रिस्सुर के एक टाइपराइटिंग इंस्टिट्युट (टंकण संस्थान) में दाखिल हुआ। कुछ शुल्क देने थे। मैंने अपने घर से तीन रुपये लिये और त्रिस्सुर आया।

वहाँ से मैंने मद्रास मठ को पत्र लिखा कि मैं रामकृष्ण मिशन में सम्मिलित होना चाहता हूँ। एक ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया—"यहाँ पर्याप्त कमरे नहीं हैं। मैसूर में एक नया केन्द्र है; उसे ब्रह्मचारी की आवश्यकता है। इसलिए कृपया वहाँ के प्रभारी स्वामी, स्वामी सिद्धेश्वरानन्द जी को लिखिए।"

अतएव, मैंने स्वामी सिद्धेश्वरानन्द जी को मैसूर पत्र लिखा। तथापि इसी समय सिद्धेश्वरानन्द जी स्वयं अपने परिवार के लोगों से मिलने त्रिस्सुर आये। उनके पिताजी कोचीन राज्य के द्वितीय राजकुमार थे। मैंने महाराज से भेंट की। उन्होंने कहा, 'हाँ, तुम आ सकते हो। क्या तुम्हारे पास ऊटी होते हुए मैसूर जाने के लिए यथेष्ट पैसे हैं?' मैंने कहा' मेरे पास मात्र तीन रुपये हैं, अधिक नहीं।' लेकिन मेरे पास मेरे कान की बाली थी। केरल में लड़के भी बालियाँ पहनते थे। मैं इन्हें बाजार में बेच सकता था, किन्तु उस दिन रविवार था। कोई दुकान खुली नहीं थी। परन्तु एक व्यक्ति ने मुझे दो रुपये दिये और सिद्धेश्वरानन्द जी ने भी मुझे दो रुपये दिये। इस तरह मेरे पास अब सात रुपये थे। किन्तु ऊटी होते हुए मैसूर जाने के लिए ये रुपये पर्याप्त नहीं थे। उस दिन ८,३० बजे रात की गाड़ी से सिद्धेश्वरानन्द जी के साथ मैं कैसे ऊटी जा सकता था? मैं मन ही मन बहुत उद्विग्न था। मैं जाने के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध नहीं था, किन्तु मैं जाने को काफी इच्छुक भी था। ऐसा मेरा मानसिक संघर्ष था। और उस समय मैं बिल्कुल अल्पवयस्क था—मात्र साढ़े सत्तरह वर्षों का। त्रिस्सुर के विवेकोदयम् हाई स्कूल में स्थित श्रीरामकृष्ण के मन्दिर में ठाकुर की कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं प्रार्थना करने गया। मैं उस मन्दिर में प्रार्थना करने के लिए अक्सर अपने घर से पुष्प ले जाया करता था। अपने वैराग्य एवं सिद्धेश्वरानन्द जी के साथ मैसूर के लिए प्रस्थान करने के लिए आँसू भरे नेत्रों से मैंने ठाकुर से प्रार्थना की। सत्तर वर्षों के बाद, अब भी, उस मन्दिर में घटी उस घटना की स्मृति मुझे आलोड़ित कर देती है।

तब, अन्तिम क्षण में, मैं सिद्धेश्वरानन्द जी के घर गया। वे रेलवे स्टेशन के लिए प्रस्थान करने को तैयार थे। उन्होंने कहा, 'ठीक है, आज ८.३० बजे रात की गाड़ी से मेरे साथ ऊटी चलो।' मैं दीक्षा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता था। मैं मिशन में सम्मिलित होना चाहता था, और मैंने ठाकुर स्वामी जी से सम्बन्धित कुछ पुस्तकें पढ़ी थीं, एवं श्री माँ सारदा देवी का स्तोत्र 'प्रकृति परमाम्' को कंठस्थ कर लिया था। मिशन में अपना जीवन समर्पित करने को मुझे उत्प्रेरित करने के लिए इतना काफी था। इस तरह, ८.३० बजे रात में हम गाड़ी में सवार हुए और अगली सुबह गाड़ी ऊटी पहुँची। ऊटी समुद्र तल से प्रायः छ हजार फीट की ऊँचाई पर है। सिद्धेश्वरानन्द जी, जो गोपाल महाराज के नाम से सुपरिचित हैं, मैं और तीन छात्र उस दल में थे। महापुरुष महाराज उन दिनों ऊटी में, जिसे वे बहुत पसन्द करते थे, एक किराये के मकान में रहते थे। वर्तमान ऊटी आश्रम उस मकान के निकट-स्थल में निर्मित हो रहा था और १६२७ ई० में उसका उद्घाटन होने वाला था। मुझे महापुरुष महाराज के आवास-भवन में ठहरने और जलपान करने की अनुमति प्रदान की गयी थी लेकिन भोजन बाहर के एक होटल में करना था। उन दिनों आश्रम में इतने अधिक लोगों को भोजन कराने की व्यवस्था नहीं थी। सो, मेरे पास जो पैसे थे, उनसे मैं बाहर में भोजन करता था। जब ऊटी में मैंने एक सप्ताह व्यतीत किया, मेरे पास के पैसे समाप्त हो गये। १५ जून १६२६ को मैंने ऊटी के लिए त्रिस्सुर से

प्रस्थान किया था और १० जून को महापुरुष जी द्वारा मुझे दीक्षा प्रदान की गयी।

मैंने उस कमरे में प्रवेश किया जिसमें महापुरुष महाराज धर्मानुष्ठान के लिए बैठे थे। उनकी बायीं ओर मेरा आसन था। मैं बैठ गया और समग्र दृश्य को देखा। तब मेरे मानस में वह स्वप्न उभर आया जिसे मैंने तीन-चार वर्ष पूर्व देखा था। मैं नियमित रूप से अपने गाँव के चट्टानी-गुफा-मन्दिर में शिव की पूजा किया करता था। उस स्वप्न में मैं ऊँचे आकाश में उठा दिया गया था; फिर मैं एक सुन्दर स्थान में पहुँचा। वहाँ एक वृद्ध श्रद्धास्पद दिखने वाले व्यक्ति बैठे थे और मेरे मन ने उन्हें शिव के रूप में पहचाना था। उन्होंने मुझे अपनी बायीं ओर बैठने को कहा और कुछ आध्यात्मिक उपदेश दिये। यही स्वप्न था और ऊटी के उस विशेष स्थान में मैंने उस स्वप्न की हू-ब-हू पुनरुत्पत्ति पायी। महापुरुष महाराज ने मुझ से पूछा, 'क्या तुम श्रीरामकृष्ण की उपासना करते हो?' मैंने कहा, 'नहीं, मैं वस्तुतः उपासना नहीं करता, लेकिन मैं उनका एक चित्र रखता हूँ और उसे नियमित रूप से प्रणाम करता हूँ।' और उन्होंने कहा, 'यह काफी है।' तब उन्होंने मुझे मंत्र दिया और मुझे पूछा, 'क्या तुम कुछ गुरु दक्षिणा लाये हो?' 'कुछ नहीं'—मैंने कहा। मात्र एक कमीज, एक धोती, और एक तौलिया—इतना ही सामान मैंने घर से लाया था। उन्होंने अपनी दायीं ओर से दो या तीन आम लिये और उन आमों को मुझे दिया और कहा—'अब इन्हें गुरु दक्षिणा के रूप में मुझे वापस करो'। मैंने उन आमों को उन्हें अर्पित किया, उन्हें प्रणाम किया और कमरे से बाहर निकल आया।

दो दिनों के उपरान्त, २ जुलाई को, मैसूर जाने के लिए हमलोगों को महापुरुष महाराज से विदा लेनी थी। स्वामी सिद्धेश्वरानन्द और मैं उनके कमरे में ५.३० बजे प्रातः उनसे विदा लेने गये। वे एक कुर्सी पर बैठे हुए कुछ मुद्रा के नोट गिन रहे थे। 'गोपाल क्या तुम कुछ रुपये चाहते हो? मैं तुम्हें दे सकता हूँ।'—उन्होंने कहा। गोपाल महाराज ने कहा, 'नहीं महाराज, आवश्यक नहीं है।'—यद्यपि मैसूर आश्रम उन दिनों बड़ा निर्धन था। मैंने अपने गुरु को प्रणाम किया। महापुरुष महाराज ने मुझे कहा—'हाँ, तुम मैसूर जाओ। गोपाल की सेवा करो।' मात्र यही एक सन्देश उस समय उन्होंने मुझे दिया। 'गोपाल की सेवा करो।' गोपाल महाराज की सेवा मैंने नौ वर्षों तक मैसूर और तीन वर्षों तक बंगलोर में निरन्तर की। वे पवित्र, दयालु और प्रेममय थे। हम तभी अलग हुए जब वे १९३८ ई० में वेदान्त सेन्टर की स्थापना करने पेरिस गये। महापुरुष महाराज से विदा लेकर ७ बजे सुबह की बस से हम चले और ९ बजे रात में मैसूर आश्रम पहुँचे। मेरी ऊटी-मैसूर यात्रा में मैसूर आश्रम के द्वारा सात रुपये व्यय किये गये थे जिसका उल्लेख मैंने बाद में देखा।

पहली बार मैंने बिजली बत्तियों एवं अन्य सारी वस्तुओं से युक्त एक बड़े शहर को देखा। एक ग्रामीण लड़के की हैसियत से, मैं शहरी जीवन के बारे में कुछ नहीं जानता था। यहाँ तक कि डाकखाने में चिट्ठी कैसे छोड़ी जाती है, चेक कैसे भुनाया जाता है आदि भी नहीं जानता था। उस रात ९ बजे, अपने जीवन में पहली बार मुझे भोजन के लिए एक ग्लास दूध और दो रोटियाँ एक लड़के द्वारा दी गयीं जो भिक्षान्नम् छात्र के रूप में आश्रम में रह रहा था। आज से सत्तर वर्ष पूर्व आश्रम में दिया गया उस रोटी और दूध के प्रथम भोजन का स्वाद मुझे अब भी याद है। यह घटना २ जुलाई, १९२९ ई० की है।

३ जुलाई को मेरे लम्बे बाल काटे गये और मेरे कानों के कुण्डल निकाल दिये गये।

तदुपरान्त, ४ जुलाई को, मैंने आश्रम के रसोई घर में प्रवेश किया। चूँकि आश्रम की आय अत्यल्प थी इसलिए कोई सवैतनिक रसोइया वहाँ नहीं था। घटिया भोजन के कारण सिद्धेश्वरानन्द जी का स्वास्थ्य खराब था। मैं एक अच्छा रसोइया था। बारह वर्ष की उम्र से ही चौदह वर्ष की उम्र तक अपने घर में पूरे परिवार के लिए रसोई बनाने का मुझे दो वर्षों का अनुभव था। इसलिए उस दिन से मैसूर आश्रम का प्रत्येक व्यक्ति अच्छा भोजन पाने लगा। अगले छः वर्षों तक मैसूर आश्रम में रसोई बनाने, थाली धोने और घर-बार देखने का काम करता रहा। मासिक चंदा उगाहने, बागवानी करने तथा कुछ अन्य कार्य भी बाद में मेरे जिम्मे लगा दिये गये। जब भी मैं लोगों से चन्दे के लिए अनुरोध करता, स्वामी विवेकानन्द के विषय में चर्चा करता। वे प्रसन्न होते और मुझे चाय तथा नाश्ता दिया करते और कभी-कभी आश्रम के लिए भी कुछ वस्तुएँ दिया करते। इस प्रकार मेरा जीवन, कार्यों के बीच में प्रचुर अध्ययन भी करते हुए, बीतने लगा। मैंने भी अध्ययन या जप-ध्यान के लिए समयाभाव की कभी शिकायत नहीं की। मैं सदैव खुश और प्रसन्न रहता था। मैं किसी भी और हर प्रकार के कार्य को ठाकुर की सेवा के रूप में करने में आनन्द का अनुभव करता था। मैंने कभी किसी थकान का अनुभव नहीं किया। मैं आश्रम के अखाड़े में छात्रों के साथ कुश्ती लड़ता और बाद में वॉली बॉल खेलने लगा।

१६२१ में मेरी ब्रह्मचर्य-दीक्षा का समय आया। सो, मार्च १६२१ में मैं बेलुड़ मठ आया। मेरा ब्रह्मचर्य बुद्ध के जन्म दिवस, २१ मई, को हुआ। उस समय लगभग चार महीने मैं बेलुड़ मठ में ठहरा। महापुरुष महाराज पुराने मन्दिर के पीछे वाले कमरे में आये और कमरे में चल रहे धर्मानुष्ठान की ओर मुख किये सस्मित-वदन बरामदे में बैठ गये। हमलोग पाँच या छः ब्रह्मचारी थे। उन्होंने मेरा नामकरण किया—यतिचैतन्य।

बेलुड़ मठ में मेरे ठहरने के दौरान परम स्मरणीय अनुभव थे नाश्ते के बाद, महापुरुष महाराज के कमरे में कभी-कभी एक घंटे से अधिक देर तक चलने वाले दैनिक प्रातःकालीन सत्र। संन्यासी टोलियों में आते और उन्हें भूमिष्ठ हो प्रणाम करते तथा एक किनारे खड़े हो जाते। वे अपनी चारपाई या कुर्सी पर अन्तर्लीन भाव से बैठे रहते। कभी-कभी आगे में हुक्का रखा रहता जिससे जब तब अनमने भाव से एकाध कश खींच लेते और वहाँ उपस्थित संन्यासियों तथा नये शिष्य से शिष्टाचार की कुछ बातें कर लिया करते थे। जब उनकी अन्तर्लीन मुद्रा में थोड़ी शिथिलता आती तब जो उपस्थित रहते उनसे विभिन्न विषयों पर बात-चीत करते जिसमें हास-परिहास का पुट रहता, जो श्रीरामकृष्ण और उनके शिष्यों की एक खास प्रीतिकर विशेषता है। कभी-कभी वह बातचीत गम्भीर आध्यात्मिक विषय में बदल जाती और जो लोग उस समय वहाँ उपस्थित रहते वे उनके मुख से निःसृत प्रत्येक शब्द को ध्यान पूर्वक सुनते। इन सब के बीच में, लोग उन्हें गहन भक्ति से आप्लावित स्वर में ऐसे आध्यात्मिक वाक्यांशों का उच्चारण करते हुए सुनते, जैसे—सत् -चित् आनन्द शिवम्, जय गुरु महाराज, जय माँ, आदि।

बेलुड़ मठ में उन दिनों मेरे दैनिक कार्यों में एक कार्य था सामने के विस्तृत प्राङ्गण में झाड़

लगाना। कभी-कभी जब मैं झाड़ू लगाता तो हवा फिर से धूल को पीछे डाल देती। अतः मुझे फिर झाड़ू लगाना पड़ता था। लेकिन इससे मैं परेशान नहीं होता, मेरे लिए यह एक खेल था। मेरा दूसरा काम था ठाकुर के पूजा-पात्रों को धोना। चाय-घर में, जो वर्तमान मन्दिर की बाईं ओर स्थित था, आश्रम के सदस्यों को चाय पिलाना एक अलग से कार्य था। कुछ अन्य कार्य भी थे, जैसे महापुरुष महाराज के स्नान के लिए लिलुआ के चापाकल से सिर पर ढोकर पानी लाना, उनके कुत्ते के लिए बेलुड़ के बाजार से थोड़ा दही लाना और भोजनालय में खाना परोसना। मैं हर कार्य के लिए प्रस्तुत था। उन दिनों मैं बिल्कुल जवान और अथक उर्जा से परिपूर्ण था। आजकल जहाँ भोजनगृह है उसी के समीप एक कुश्ती का अखाड़ा भी था। महापुरुष जी के सेवक स्वामी अपूर्वानन्द एक अच्छे पहलवान थे। मैंने उनके साथ दो-तीन दूसरे लोगों के साथ उस अखाड़े में कुश्ती लड़ी थी। बहुत से लोग हमलोगों की कुश्ती देखने इकट्ठे हो जाया करते थे। वाराणसी सेवाश्रम से एक रसोइया आया था। वह भी एक अच्छा कुश्तीबाज था। जब उसने मेरा हाथ पकड़ा तो मेरे हाथ की ताकत जाती रही, ऐसी उसकी शक्ति थी, जबकि वह देखने में साधारण-सा लगता था। अखाड़े के समानान्तर ही, जहाँ आजकल उत्सव-समारोहों के अवसर पर मंच खड़ा किया जाता है, ज्ञान महाराज का एक खम्भा गड़ा था। वहाँ मैं थोड़ा-सा खम्भे का व्यायाम किया करता था। मेरे पास हर चीज के लिए समय था। दिन और रात के भोजना को छोड़कर मैं हर समय काफी भूखा रहा करता था। सुबह के नाश्ते में चाय और पावरोटी का एक पतला टुकड़ा मिलता था। रोटी का टुकड़ा छुरे की पत्ती के समान पतला होता था, जिस पर थोड़ा-सा मक्खन लगा रहा था। जहाँ तक चाय का प्रश्न है, सभी अन्तेवासियों के लिए केवल एक ग्लास दूध और ढेर सारा पानी और चीनी। तत्कालीन महासचिव श्रद्धेय शुद्धानन्द जी, और श्रद्धेय स्वामी विरजानन्द जी एवं अन्य वरिष्ठ स्मामीजीगण भी वहाँ उपस्थित रहते थे और मैं उन लोगों को चाय दिया करता था। अपनी भूख मिटाने के लिए, मठ के बरामदे में एक बड़ी टिन में रखी गयी मूढ़ी निकाल कर अपनी कमीज के आखिरी छोड़ में रख लिया करता था और खूब अधिक खा लिया करता था। अर्थाभव के कारण भोजन बड़ा घटिया किस्म का बनता था, दाल पानी सी पतली होती थी, लेकिन चर्चरी (बंगाल की एक विशेष सब्जी) और आलूदम स्वादिष्ट हुआ करते थे।

उस समय मैं अनेक वरिष्ठ संन्यासियों से से परिचित हुआ। यही वह समय था जब गणेन-संकट आ खड़ा हुआ था। जदुपति स्टेट की देखभाल करने वाले, उद्‌बोधन में कार्यरत ब्रह्मचारी गणेन्द्र नाथ ने मिशन को चुनौती दी। मिशन एक गंभीर संकट में फँस गया। गणेन रामकृष्ण मिशन के अनेक सदस्यों को प्रभावित करने लगा। कलकत्ते के समाचार-पत्रों पर भी उसका खासा अच्छा प्रभाव था। मुख्यालय ने विभिन्न आश्रम के स्वामियों को बेलुड़ मठ आने को कहा। जब-तब घंटी बज उठती और साधुगण समस्याओं पर विचार करने एकत्र हो जाया करते। स्वामी ओंकारानन्द जी नेतृत्व किया करते थे। तब हमलोग प्रस्ताव पारित करते और गणेन्द्र नाथ के विरुद्ध महापुरुष महाराज को अर्पित करते। इस तरह लगातार एक महीने से अधिक समय तक वह संकट का काल चलता रहा। अन्ततः मिशन एसोशियेशन की आम सभा की बैठक शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गयी। गणेन मठ में आया था किन्तु उसने बैठक में भाग नहीं

नहीं लिया। मैंने उसे बैठक के बाहर लॉन में सिगरेट पीते हुए टहलते देखा। अनेक स्वामियों को मिशन का सदस्य बनाया गया। उस समय मैं भी मिशन का सदस्य बनाया गया। जुलाई, १९२९ में गणेन समस्या का समाधान उसे स्टेट की व्यवस्था करने के लिए ७५,००० रुपये देकर किया गया। उसने निवेदिता स्कूल की एक महिला शिक्षिका चपला को साथ लेकर संघ छोड़ दिया।

मुख्य मठ-भवन (सीढ़ी के ऊपर) के प्रथम तल की दीवर पर जो समूह-चित्र तुम लोग देखते हो, वह मई १९२९ में मुख्यमठ-भवन और गंगा घाट के बीच स्थित लॉन (मैदान) में विभिन्न-शाखा-केन्द्रों से उस समय आये हुए हमारे साधुओं के विशाल जमावड़े को ध्यान में रखकर, खींचा गया था। श्रद्धेय सुबोधानन्द जी, श्रद्धेय शुद्धानन्द जी, श्रद्धेय विरजानन्द जी तथा कई अन्य केन्द्रों के प्रधान उस चित्र में हैं। मैं भी उस फोटो में हूँ। महापुरुष महाराज ऊपरी बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे। लेकिन फोटो खींचने में देर हो रही थी, अतः वे अपने कमरे में चले गये। स्वामी विविदिशानन्द अमेरिका जा रहे थे। अतः यह फोटो उस अवसर पर उनकी विदाई के रूप में भी थी।

बेलुड़ मठ में चार महीने मैंने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक बिताये। तत्कालीन, महासचिव, स्वामी शुद्धानन्द जी कभी-कभी मुझ से कहा करते थे, "तुम यहाँ कब तक ठहरोगे? तुम्हें अपने केन्द्र मैसूर जाने का समय हो गया है। बेलुड़ मठ इतने अधिक अतिथियों पर इतना अधिक खर्च नहीं कर सकता।" मैं उत्तर दिया करता, "मैं शीघ्र चला जाऊँगा, मैं शीघ्र चला जाऊँगा" और चार महीनों के पश्चात्, मैं मैसूर लौट गया।

१९३३ ई० में मैं फिर बेलुड़ मठ आया। इस बार संन्यास लेने के क्रम में आया था। वह स्वामी विवेकानन्द का जन्म-दिवस था—२३ जनवरी, १९३३ ई०। यह एक भव्य अवसर था। परन्तु उस समय महापुरुष महाराज कमजोर हो गये थे और इसलिए पुराने मन्दिर के पीछे वाले कमरे में आयोजित धर्मानुष्ठान में भाग नहीं ले सके। वे अपने कमरे में थे। संन्यास हवन के उपरान्त, हमलोग, दिवंगत स्वामी हितानन्द और स्वामी कृष्णात्मानन्द सहित कुल नौ लोग, उनके (महापुरुष महाराज के) कमरे में गये और उनसे संन्यास मंत्र प्राप्त किया। साथ ही गेरुआ वस्त्र और संन्यास-नाम भी हमने प्राप्त किये। यहाँ इस बात का उल्लेख करना रोचक होगा कि महापुरुष महाराज की आज्ञा से, संघ में अपने प्रवेश के चौथे या पाँचवें महीने, सन् १९२७ से ही, मैं गेरुआ वस्त्र पहन रहा था। उस समय मैं संन्यास के विषय में अधिक बातें नहीं जानता था।

मैं करीब चार महीनों तक लगातार बेलुड़ मठ में रहा। उस अवधि में, मेरे मन में सारगाछी जाने और स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज से मिलने की इच्छा जगी। जिन दिनों मैं स्वामी विवेकानन्द की रचनाएँ पढ़ रहा था तो मैंने पाया था कि स्वामीजी ने स्वामी अखण्डानन्द जी की अत्यधिक प्रशंसा की है। गरीबों और पद-दलितों की सेवा करने के स्वामीजी के सन्देश को क्रियान्वित करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। 'तुम मेरे आदमी हो, तुम मेरे आदमी हो!'—इन शब्दों में स्वामीजी ने उनकी प्रशंसा की थी। अतः मैंने स्वामी अखण्डानन्द जी से सारगाछी मिलने की एक गुप्त आकांक्षा पाल रखी थी। मैंने महापुरुष महाराज से सारगाछी जाकर उनसे (स्वामी अखण्डानन्द जी से) मिलने की आज्ञा ले ली। उन दिनों, हमलोग सप्ताहान्त का वापसी टिकट ले सकते थे। उस समय यह बड़ा सस्ता था—शुक्रवार को आप जाइए और रविवार को

लौट आइए । सो महापुरुष महाराज के आशीर्वाद लेकर मैं सारगाछी गया । वहाँ का सप्ताहान्त मैंने उत्कृष्ट रूप से व्यतीत किया । मैंने अखण्डानन्द जी से भेंट की, उन्हें प्रणाम किया और अपने हृदय की आकांक्षा उन्हें बतायी । सुदूर मैसूर आश्रम से आया हुआ मैं एक नवागन्तुक था और मुश्किल से चौबीस या पच्चीस वर्षों का नवयुवक था । किन्तु स्वामी अखण्डानन्द जी ने मुझ से एक परम विशिष्ट अतिथि के समान बरताव किया — विशेष प्याला, खास तश्तरी, खास केटली—मेरे लिए सब कुछ खास । और वे छात्रावास के लड़कों से कहा करते, 'जाओ, और स्वामी को प्रणाम करो ।' मैंने यह कहते हुए प्रतिकार किया कि आपके समक्ष यह नहीं होना चाहिए । मैंने कहा, "महाराज, आप क्या कह रहे हैं ? क्या आपके सामने में उन्हें यह करना चाहिए ?' वे कहते, "अरे, तुम मैसूर से आये हो, और लड़कों की ओर घूमकर पुनः कहते, 'प्रणाम करो ।' तब सभी लड़के आते और प्रणाम करते ।

एक दिन वे उद्यान से विलम्ब से भोजन के लिए आये और कहा—'शंकर, मेरे शरीर में दर्द है ।' 'क्यों ?'—मैंने पूछा । मुझे एक विशेष सब्जी तोड़ने के लिए, जो काफी बढ़ गयी थी, नीचे झुकना पड़ा—महाराज ने उत्तर दिया । मैंने कहा—'यहाँ इतने अधिक ब्रह्मचारी और साधु हैं, फिर आप यह सब स्वयं क्यों करते हैं ?' उन्होंने कहा—'ओह, तुम क्या कहते हो ? वे सब मूर्ख हैं; वे अपने कार्य सुचारू ढंग से नहीं करते हैं । बेलुड़ मठ यहाँ केवल मूर्खों को भेजता है !' (हँसी) । मैंने कहा, 'मुझे दुःख है कि आपको दर्द है ।' महाराज ने उत्तर दिय,—'हाँ, तुम जानते हो, मुझे कुछ कठिनाइयाँ हैं…'

इस तरह, वे मुझसे एक युवक की भाँति हास-विनोद भरी बातें किया करते थे । मैंने एक गंभीर मस्तिष्क और सदय हृदय के साथ उनमें यह विशेषता पायी । एक दिन उन्होंने मुझे पूछा—'तुम्हें मेरा आश्रम कैसा लगता है ?' 'मुझे बहुत अच्छा लगता है; मुझे यहाँ नींद आती है ।'—मैंने उत्तर दिया । महाराज ने कहा—'क्या ? मेरा आश्रम केवल सोने के लिए है ? स्वामी परमानन्द यहाँ थे । उन्होंने कहा कि मुझे यहाँ अच्छा ध्यान लगता है ।' मैंने प्रत्युत्तर दिया, 'महाराज, वे यही चाहते थे । किन्तु मुझे अच्छी नींद की जरूरत थी और वह मैंने यहाँ भली-भाँति पायी ।'

इस प्रकार, दो दिन बीत गये । विदा का दिन आ गया । मैंने उनसे कहा,—'महाराज, आप इस जंगल में रहते हैं । कई भक्त बेलुड़ मठ आपके—ठाकुर के अन्तरंग शिष्य के— दर्शनार्थ से आते हैं । अतः आप यदि बेलुड़ मठ में रहें तो बड़ा अच्छा होगा ।' उन्होंने पूछा—'इस केन्द्र की देखभाल कौन करेगा ?' बेलुड़ मठ किसी को भेज देगा ।'—मैंने कहा । उन्होंने कहा,—'मठ केवल एक मूर्ख को भेज देगा !' (हँसी) । भाषा का विनोद और आमोद-प्रमोद तो देखो ! "अगर तुम आ जाओ और यहाँ ठहर जाओ तो फिर मैं बेलुड़ मठ जाने को तैयार हूँ ।'—उन्होंने कहा । मैंने कहा—"बेलुड़ मठ आवश्यक कार्य करेगा; परन्तु हमलोग चाहते हैं कि आप बेलुड़ मठ में रहें ताकि मैं और अन्य अनेक लोग आपका दर्शन कर सकें ।"

फिर मुझे विदा लेने और रेलवे स्टेशन जाने का समय आ गया । आश्रम से थोड़ी ही दूर पर स्टेशन है । मैं उनके कमरे में गया, प्रणाम किया और उनसे कहा "महाराज, मैं आपका आशीर्वाद चाहता हूँ । मैं लोगों, विशेषकर युवाओं के बीच कार्य करता हूँ । मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं युवकों को स्वामीजी के विचारों के प्रति प्रेरित

करने के लिए स्वामीजी का यंत्र बन सकूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं वह सामर्थ्य प्राप्त कर सकूँगा। मैंने स्वामीजी को नहीं देखा है, लेकिन मैंने आपके दर्शन किये हैं और उन्होंने आपको अत्यधिक प्यार किया था। आपका आशीर्वाद मेरे लिए स्वामीजी का आशीर्वाद होगा।" ज्यों ही मैंने उनसे कहा, उनके हृदय का सारा हलकापन जाता रहा। वे बहुत गंभीर हो गये और अपने दोनों हाथ मेरे मस्तक पर रख दिये और कहा—"मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ! मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ!" मैंने अपने भीतर एक जबर्दस्त उत्थापन (उठान) का, अपने भीतर से एक प्रकार की शक्ति के उद्भूत होने का अनुभव किया। तदुपरान्त मैंने उन्हें प्रणाम किया और चुपचाप बरामदे पर चला आया, और रेलवे स्टेशन की ओर अग्रसर होने लगा। और पीछे मुड़कर देखने पर मैंने उन्हें बरामदे पर, मेरी ओर तब तक निहारते हुए खड़ा पाया, जब तक मैं स्टेशन में ओझल नहीं हो गया।

कलकत्ता लौटने पर, सर्वप्रथम मैं अद्वैत आश्रम गया और तब बेलुड़ मठ पहुँचा। जब मैं मठ में पहुँचा तो मैंने देखा कि स्वामी अखण्डानन्द जी वहाँ पहले से पहुँचे हुए हैं क्योंकि वे सीधे आये थे और मैं अद्वैत आश्रम होता हुआ आया था। उन्होंने महापुरुष महाराज के मस्तिष्कीय आघात का तार पाया था। मुझे देखकर उन्होंने कहा, "शंकर, देखो, तारकदा की हालत। क्या इसी के लिए तुमने मुझे बेलुड़ मठ आने को कहा था? देखो, क्या हो गया है?" प्रथम एक महीने तक महापुरुष महाराज अचेतावस्था में पड़े रहे और उनकी हालत बहुत चिन्ताजनक थी। परन्तु धीरे-धीरे चेतना लौटी। यद्यपि वे बोलने में असमर्थ थे तथापि वे मुस्कुरा सकते थे और अपने हाथ हिला सकते थे। सावधानीपूर्ण उपचार किया गया था। बर्फ की कई पोटलियाँ उनके माथे पर हमेशा रखी रहती थे और इससे उनकी दशा में सुधार हुआ।

स्वामी अखण्डानन्द जी ने मुझे कहा, "मुझे थोड़ी गठिया हो गयी है। मैंने सुना है कि इसमें गुरुवायुर श्रीकृष्ण के मन्दिर का तेल बड़ा लाभकारी होता है।" मैंने उनसे कहा, "मैं वह तेल भेज दूँगा।" फिर मैंने महापुरुष महाराज से विदा ली। उन्होंने मात्र अपना हाथ आशीर्वाद देने के लिए उठाया और अपने प्रिय सेवक शंकर (स्वामी अपूर्वानन्द जी) से संकेतों के द्वारा निर्देश दिया, "इसे चामुण्डी मन्दिर और आश्रम में ठाकुर की प्रणामी के लिए कुछ दे दो।" शंकर महाराज उनका आशय समझ गये। उन्होंने कुछ रुपये लाकर मुझे दिये। मैंने उन्हें और अखण्डानन्द जी को प्रणाम किया और मैसूर के लिए प्रस्थान किया। मैंने चामुण्डी मन्दिर में जहाँ महापुरुष महाराज पहले जा चुके थे, पूजा की और आश्रम में भी पूजा की और बेलुड़ मठ में उन्हें प्रसाद तथा अखण्डानन्द जी को तेल भेज दिया। दूसरे वर्ष फरवरी, १९३४ में महापुरुष महाराज ने महाप्रयाण किया और अखण्डानन्द महाध्यक्ष बने। संघ के महाध्यक्ष महापुरुष महाराज और उपाध्यक्ष स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज से यही मेरा साहचर्य था।

जब मैं बेलुड़ मठ में ब्रह्मचारी के रूप में रहता था, खोका महाराज, स्वामी सुबोधानन्द जी स्वामीजी के शयन कक्ष के उत्तर वाले कमरे में रहते थे। मैं कुछ समय उनके साथ व्यतीत किया करता था। वे गंगा की ओर मुँह किये बरामदे में लेटे बच्चे की तरह हुक्के का आनन्द लेते हुए लेटे रहते थे। मैं उनकी बगल में बैठ जाता था। मैं उनसे बहुत खुला हुआ था और बड़े मुक्त भाव से उनके पेट को अपने हाथों से सहलाया करता था जब वे मुझसे विभिन्न विषयों पर बातें किया करते रहते थे।

बेलुड़ मठ की मेरी दूसरी यात्रा १९३७ ई० में श्री रामकृष्ण शताब्दी समारोह के अवसर पर हुई जब स्वामी विज्ञानानन्द जी महारज संघ के परम अध्यक्ष हो चुके थे। वे सुदूर इलाहाबाद में थे। मैं बेलुड़ मठ से बनारस (वाराणसी) गया। मैंने स्वयं से कहा, 'इलाहाबाद निकट ही है। मुझे इलाबाद जाना चाहिए और अपने संघ के महाध्यक्ष विज्ञानानन्द जी महाराज का दर्शन करना चाहिए।' अतः मैं बनारस से इलाहाबाद गया। वहाँ आश्रम में गया और १ अप्रैल १९३७ ई० को विज्ञानानन्द जी महाराज को प्रणाम किया। उन्हें बीच में रखकर और कुछ भक्तों एवं मेरे साथ एक समूह-चित्र लिया गया था। लेकिन लगता है कि वह समूह चित्र कहीं खो गया है। इलाहाबाद आश्रम द्वारा हाल में प्रकाशित नये अलबम में वह फोटो नहीं है। १ अप्रैल का दिन था। यही वह दिन था जब कांग्रेस की सरकारों ने सत्ता अधिग्रहण—ब्रिटिश शासन के अधीन प्रान्तीय स्वायतत्ता की शुरुआत की थी।

बदस्तूर, मैंने देखा कि विज्ञानानन्द जी की जेब विभिन्न वस्तुओं—दाढ़ी बनाने के सामानों का सेट और ऐसी वस्तुओं—से भरी पड़ी थी। यह विज्ञानानन्द जी का सामान्य आचरण था। जब मैंने उनसे कहा कि मैं आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ, तो उन्होंने कहा—'हाँ, हाँ, तुमने मुझे देख लिया है, अब जाओ और पीने का पानी पी लो और तुम वापस जा सकते हो।' मैंने उनकी उस अभ्युक्ति का आनन्द उठाया। मैंने पहले ही जान लिया था कि वे अकेले रहना पसन्द करते थे। किन्तु, अन्य स्वामियों ने एक बंगाली भक्त-परिवार में मेरे भोजन की व्यवस्था कर रखी थी' और उस दिन मैंने अपने जीवन का सर्वोत्तम भोजन किया था। फिर मैं बनारस लौट आया। वहाँ से कलकत्ता और यहाँ से मैसूर आया। विज्ञानानन्द जी ने पूर्व में मद्रास और मैसूर की यात्रा की थी और कुछ भक्तों को उन स्थानों में दीक्षा प्रदान की थी।

जब मैंने पन्द्रह वर्ष की उम्र में सर्वप्रथम श्रीरामकृष्ण वचनामृत को पढ़ा था तभी से इसके लेखक श्री 'म' या महेन्द्र नाथ गुप्त के प्रति मुझमें बहुत प्रेम और आदर का भाव विकसित हो रहा था। अतः जब मैं १९२९ में ब्रह्मचर्य के लिए बेलुड़ मठ आया था, मुझे उनके दर्शन करने और उन्हें प्रीतिपूर्ण आदर अर्पित करने का अवसर पाकर प्रसन्नता हुई थी। एक दिन मैं श्री 'म' को अपने आदर अर्पित करने दो अन्य साधुओं के साथ कलकत्ता गया। हमलोग शाम को ऊपरी मंजिल पर गये, उनसे मिले और श्रीरामकृष्ण के संबंध में उनकी बातें सुनते हुए उनके साथ प्रायः तीन घंटे व्यतीत किये। विदा लेने के समय उन्होंने हमें एक टोकड़ी फल और मिठाइयाँ दीं। जब मैं उन्हें ले रहा था, मैंने उनसे पूछा, 'क्या यह ठाकुर के भोग के लिए है?' उन्होंने कहा—'नहीं, नहीं, यह साधुओं के लिए, साधुओं के लिए है।' यही पर्याप्त है। ठाकुर ने मुझे साधुओं की सेवा करने को कहा है:' इसी भाषा का उन्होंने प्रयोग किया। अतः, मैंने उसे लाकर साधुओं में वितरण के लिए मठ भण्डार में दे दिया।

स्वामी अभेदानन्द जी महाराज से उनके कलकत्ता-आश्रम में मिलने का मुझे सुयोग मिला था। उन्होंने अपने व्याख्यानों के विषय में बातें कीं। मैंने उनके व्याख्यान पहले ही पढ़े थे। १९३७ में श्रीरामकृष्ण शताब्दी के अवसर पर कलकत्ते के नगर-भवन में मैंने उनका व्याख्यान सुना था। यह बड़ा ही रुचिकर व्याख्यान था। मैंने युनिवर्सिटी इंस्टीट्युट (विश्वविद्यालय संस्थान) में रवीन्द्रनाथ टैगोर का व्याख्यान भी सुना था। ठाकुर के अन्तरंग शिष्यों और टैगोर के साथ ये ही मेरे संसर्ग हैं।

जहाँ तक महापुरुष महाराज की बात है, उनका मार्गदर्शन मेरी आध्यात्मिक शक्ति का बहुत बड़ा स्रोत रहा है। मेरे पत्रों के उत्तर में वे मुझे 'प्रिय यति चैतन्य' या 'प्रिय शंकरन्' सम्बोधित कर लिखा करते थे। इन पत्रों में उनके सचिव स्वामी गंगेशानन्द या द्विजेन महाराज के हाथों की लिखावट रहा करती थी। एक बार मैंने उनसे पूछा कि क्या इन पत्रों में आपकी भी कोई पंक्ति है? उन्होंने उत्तर दिया, 'बिल्कुल नहीं। ये सभी उनकी (महापुरुष जी की) हैं। मैंने केवल वही लिखा है जो उन्होंने मुझसे लिखवाया।' १९२७ से १९३१ के बीच मैंने आध्यात्मिक मार्गदर्शन चाहते हुए महापुरुष महाराज को कुल आठ पत्र लिखे थे और मैं उपयुक्त उत्तर पाया करता था। ये पत्र मैंने बेलुड़ मठ के श्रीरामकृष्ण-संग्रहालय को दे दिये हैं। दिसम्बर १९२७ को बनारस से लिखे गये एक पत्र में महापुरुषजी ने लिखा : 'मैं तुम्हारे पत्र से प्रसन्न हूँ।...यदि तुम्हें अपने में और श्रीरामकृष्ण की कृपा में विश्वास है तो तुम निश्चय ही आत्मजयी होओगे। वे उसी की सहायता करते हैं जो संघर्ष करता है—यही उनका स्वभाव है। सदैव स्मरण रखो कि उनके सहायक हाथ सदैव तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं अन्यथा तुम कबके परास्त हो चुके होते और एक साधारण व्यक्ति हो जाते। इसलिए डरो मत :...उनकी कृपा से मन का स्वभाव परिवर्तित होगा और वह तुम्हारे पार्श्व की सहयोगिनी बन जायगा।'

और ७-७-१९३० को बेलुड़ मठ से लिखे अपने एक अन्य पत्र में महापुरुष महाराज ने मुझे लिखा : 'तुम्हारा पत्र और श्री चामुण्डा देवी का प्रसादम् प्राप्त हुए। मैं तुम्हें आशीर्वाद दे रहा हूँ। तुम्हें यहाँ दुबारे इतनी जल्दी आने की जरूरत नहीं है। रेल-भाड़े में इतना अधिक खर्च करने की क्या जरूरत है?...जहाँ कहीं तुम रहो श्री गुरु महाराज से प्रार्थना करो, मात्र उनकी ही कृपा से तुम शान्ति पा सकते हो; तुम्हें यहाँ-वहाँ भटकने की आवश्यकता नहीं है। कार्य करना मत छोड़ो; इसे प्रार्थना और ध्यान के साथ संयुक्त करने की चेष्टा करो।'

और इसीलिए, तपस्या करने के हेतु यहाँ-वहाँ जाने की मैंने कभी चिन्ता नहीं की। मैंने यह समझ लिया कि जिस दिन मैंने संघ में योगदान किया उसी दिन से निरन्तर तपस्या में हूँ और संघ में मेरा जीवन एवं कार्य स्वयं ही तपस्या है। मेरे व्यक्तित्व के विकास में स्वामी विवेकानन्द की पत्रावली के एक पत्र के एक वाक्य ने मुझे प्रेरित किया है : 'गम्भीरता के साथ बालसुलभ सरलता को मिलाना सीखो।'

मैं स्वामी निर्मलानन्द जी के साथ अपने सम्पर्क का भी उल्लेख करूँगा, जो, यद्यपि श्रीरामकृष्ण के शिष्य नहीं माने जाते हैं, तथापि उन्होंने उनका (श्रीरामकृष्ण का) दर्शन किया था। उनसे हुई मेरी पहली मुलाकात का बड़ा दुःखद अनुभव है। १९२७ ई० में वे पोन्नमपेट के रास्ते बंगलोर से मैसूर आये। स्वामी सिद्धेश्वरानन्द जी और मैं उन्हें लेने, रेलवे स्टेशन गये। हमलोगों को देखकर जो प्रथम वाक्य उन्होंने उच्चारित किया वह यह था, 'बेलुड़ मठ चूल्हे भाड़ में चला गया है।' मेरे लिए इतना ही काफी था। मेरी उनमें कोई अभिरुचि नहीं रह गयी थी। कुछ ही दिनों बाद मैं पोन्नमपेट आश्रम गया और एक बार फिर उनसे मुलाकात की। फिर आया १९३१ का बंगलोर-मुकदमा जिसे बेलुड़ मठ ने बंगलोर को उनके (निर्मलानन्द जी के निजी सम्पत्ति के दावे के विरोध में दायर किया था। मठ स्वयं मुकदमा नहीं लड़ना चाहता था किन्तु सर अलादि कृष्णस्वामी अय्यर जैसे प्रतिष्ठित वकील ने मठ को समग्र संघटन के हित में स्वामी निर्मलानन्द जी के दावे का विरोध

करने का परामर्श दिया। अतः मामला बंगलोर कोर्ट में गया। रामकृष्ण मठ और मिशन के सहायक सचिव दिवंगत स्वामी अमृतेश्वरानन्द जी (परेश महाराज) ने मुकदमें का कुशलता से संचालन किया। यह मुकदमा १९३५ में खत्म हुआ। न्यायालय ने निर्णय दिया कि बेलुड़ मठ ही बंगलोर आश्रम का स्वामी है। और स्वामी चिन्मायानन्द और मैं बंगलोर आश्रम का प्रारंभिक कार्यभार ग्रहण करने के लिए भेजे गये।

अतः श्रीरामकृष्ण के पाँच संन्यासी शिष्यों, यथा—स्वामी शिवानन्द जी, अखण्डानन्द जी, सुबोधानन्द जी, अभेदानन्द जी और विज्ञानानन्द जी; तथा मास्टर महाशय के सम्बन्ध में यही मेरे संस्मरण हैं। ❁

"निःस्वार्थता अधिक लाभदायी है, केवल लोगों को इसे आचरण में लाने का धीरज नहीं है।"

—स्वामी विवेकानन्द

# श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्यों की बातें

स्वामी निर्वाणानन्द

अनुवादक—स्वामी चिरन्तनानन्द

रामकृष्ण मिशन, नरोत्तमनगर, अरुणाचल प्रदेश

( रामकृष्ण संघ की बंगला मासिक पत्रिका उद्बोधन के जुलाई १९९६ अंक से अनूदित )

ठाकुर के शिष्यों के श्रीमुख से बार-बार सुना है, "भगवान ही एकमात्र अपना है। सभी अवस्था में उनके ऊपर निर्भर होकर चलना होगा। अभ्यास एवं शरणागति—ये दो धर्म-जीवन की आवश्यक शर्तें हैं।

नारियों के सम्बन्ध में उनकी दृष्टि लक्ष्यणीय थी। नारियों के भीतर वे जगज्जननी को देखते, उनके दुःख-कष्ट, उन्हें निरानन्द देखकर वे अत्यन्त व्यथित होते। महिलाओं से वे कहते, "तुम लोग आनन्दमयी की सन्तान हो। तुम लोगों को विषण्ण देखने से हम लोगों को अच्छा नहीं लगता। सब समय आनन्द में रहो।" वे लोग कहते, "जो जाति, जो देश, जो समाज नारियों का सम्मान नहीं करता—उस जाति, उस देश, उस समाज का अधोपतन हो जाता है। ठाकुर चाहते थे नारी जाति स्वयं अपने पैरों पर खड़ी होना सीखे। इसीलिए गौरी माँ को नारी जाति के उत्थान के लिए काम करने के निर्देश दिए थे। नारियों की समस्या, नारियों की दुर्बलता, नारियों की शक्ति नारी ही अच्छी तरह समझेगी। इसीलिए गौरी माँ के ऊपर नारी जाति का उत्थान करने का दायित्व उन्होंने दिया था। स्वामीजी ने जो नारी जाति की उन्नति के लिए इतना चिन्तन किया है, इतना कहा है एवं किया है—उसके मूल में ठाकुर की ही प्रेरणा थी। ठाकुर के पास से स्वामीजी ने सीखा था नारियों की उन्नति की मूल नीति, नारियों के द्वारा ही नारियों को उठाना—नारियों को जगाना।

बहुत बार मेरे मन में आया है। बहुत बार मुझे ऐसा लगा है कि ठाकुर-स्वामीजी का भाव पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं ने ही अधिक अच्छी तरह समझा है एवं स्वीकार किया है। गौरी-माँ,

गोलाप-माँ, योगीन-माँ, गोपाल की माँ ठाकुर को जैसे समझी हैं, ठाकुर के गृहस्थ पुरुष भक्तों के बीच कितने लोग ठाकुर को उस तरह समझे हैं, कितने लोगों ने उस प्रकार स्वयं के जीवन को ठाकुर के लिए समर्पित किया है। स्वामीजी के शिष्यों के बीच निवेदिता, मैकलाऊड, क्रिस्टिन एवं ओली बुल की क्या कोई तुलना है ? उनके कितने गृही पुरुष भक्तों ने महिला भक्तों के समान ठाकुर की सेवा में प्राण न्योछावर किया है ?

एक बार बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) ने रथ यात्रा में तले हुए पापड़ एवं बेंगुनी खरीदकर खाने के लिए हम लोगों को पैसा दिया था। हम तीन-चार लोग पैदल चलकर माहेश में रथयात्रा देखने गए थे एवं बाबूराम महाराज के निर्देशानुसार वहां बेंगुनी एवं पापड़ खरीद कर खाए थे। मठ वापस आने तक बहुत रात हो गयी थी। भोर चार बजे मठ से रवाना हुए थे। वहां जाने के लिए हम लोगों से अधिक उत्साह बाबूराम महाराज का ही था, इसी तरह वे हम लोगों को बहुत बार यहाँ-वहाँ भेजते। वे कहते, "ठाकुर हम लोगों को रथ-यात्रा में यहाँ-वहाँ भेजते। कहते, 'मेला में जाने से कुछ खरीदना होता है। छोटे-मोटे दुकानदार थोड़ा-बहुत चीज-वस्तु लेकर दूकान सजाकर बैठते हैं। तुम लोग कुछ-कुछ खरीदोगे तभी तो उन लोगों को दो पैसा मिलेगा।' रथ-यात्रा में बेंगुनी, पापर भाजा खरीदकर खाने के लिए ठाकुर ही हम लोगों को माँ से पैसा लेने के लिए कहते। माँ को भी बोलकर रखते हम लोगों को पैसा देने के लिए।" बेंगुनी एवं पापड़ भाजा हम लोग कितना सा खरीदते एवं खाते, किन्तु इस घटना से हम लोग उन लोगों की दृष्टिभंगी को कुछ हद तक समझ पाते हैं। साधारण मनुष्यों के प्रति उन लोगों में कितनी पीड़ा एवं कितना प्यार था इसका कुछ आभास हम पाते हैं।

माहेश में और एक बार हम कुछ लोग महाराज के साथ रथ-यात्रा देखने गए थे। क्या ही आनन्द था उस दिन ! वहाँ एक दो दिन रहे। गाड़ी में गए थे। जगन्नाथ देव का अन्नप्रसाद भी पाया था।

एक बार बाबूराम महाराज ने हम कुछ लोगों को बाली में एक माध्यामिक शाला के पुरस्कार वितरण सभा में भाग लेने के लिए भेजा था। सभा के समाप्त होने पर हम लोग वापस जाने के लिए उठ रहे थे तभी स्कूल के अधिकारियों ने कुछ चाय-पान के लिए बैठने लिए कहा। हम लोग बैठे हुए हैं; तभी एक घटना पर हमारी नजर पड़ी, देखा, एक वृद्धा हम लोगों की ओर स्थिर दृष्टि से देखती हुई सभा भवन के एक कोने में बैठी है। उनकी आँखों की पलकें हिल नहीं रही है। दोनों आँखों से अविरल अश्रुपात हो रहा है। हमलोगों ने उनके पास जाकर पूछा कि वे रो क्यों रही हैं ? उन्होंने रोते-रोते कहा, "बाबा, मेरा परम सौभाग्य हुआ था उस देवता के दर्शन करने का — दक्षिणेश्वर के वही पतित-पावन ठाकुर को इन्हीं आँखों से देखने का। परन्तु बाबा, तुम लोगों ने तो उन्हें देखा नहीं है, वैसा भाग्य तुम लोगों का नहीं हुआ। तुल लोगों ने मात्र उनका नाम सुना है, उससे ही तुम लोगों ने घर द्वार सब छोड़कर, सर्वस्य त्याग कर उन्हें आश्रय बनाया है, एक मात्र उनकी ही शरण ली है। इसलिए सोच रही हूँ, तुम लोग कितने भाग्यवान हो ! मैंने तो उन्हें अपनी आँखों से देखा है किन्तु देखने से भी तो मेरा कुछ नहीं हुआ।" ठाकुर के नाम से जिस प्रकार वृद्धा के दोनों गाल से बहकर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी वह देखकर हमलोगों को ऐसा लगा था कि ठाकुर की कृपा से वृद्धा को निश्चय ही कुछ आध्यात्मिक अनुभूति हुई है। हमलोगों ने तो ठाकुर के शिष्यों को देखा है, उनके सान्निध्य में रहे हैं, उनका

स्नेह एवं प्यार पाया है इसीलिए मठ में रह गए हैं, साधु-जीवन का आश्रय किए हैं। किन्तु अब लड़के-लड़कियों ने तो उन लोगों को देखा नहीं है, उनका सान्निध्य उन्हें मिला नहीं। उनके अतुलनीय प्रेम का आस्वाद उन्हें मिला नहीं। फिर भी तो वे आ रहे हैं; मात्र उनका नाम सुनकर उनको शरण में आ रहे हैं। आहा वे कितने भाग्यवान हैं! परन्तु इसी के साथ यह बात भी मन में आती है, आहा, ये लोग यदि उन लोगों को देखते, उन लोगों के सान्निध्य में रहते, उन लोगों के स्नेह एवं प्यार का स्वाद पाते!

ठाकुर के प्रत्येक त्यागी शिष्य ने ही सत्य की उपलब्धि की है। परिणामतः पार्थिव सुख-स्वच्छन्दता की ओर उनकी नजर नहीं थी। कहा जाता है, ज्ञानी जन सांसारिक सुख भोग नहीं कर सकते, क्योंकि सांसारिक सुख का त्याग करके उन्होंने इस जीवन का निर्माण किया है। अपरिग्रह होना होगा, अत्यन्त प्रयोजनीय द्रव्य ग्रहण करने के समय भी मनमुख एक करना होगा। ठाकुर बार-बार कहते, "मन-मुख एक करना होगा।" वे सब ठाकुर की किसी भी चीज का दुरुपयोग करने के विरुद्ध थे। खाना परोसते समय भात गिरने से बाबूराम महारज गाली देते। कहते, "प्रथम तो ठाकुर की चीज नष्ट हो रही है, दूसरे परोसने वाला उच्छृंखल हो जाएगा। जिसको परोस रहा है उसके प्रति श्रद्धा रहना उचित है, काम देखकर लोग समझेंगे; तुम्हारे मन की गति किस तरफ है। लोगों के प्रति तुम्हारी श्रद्धा रहने से कार्य का प्रकाश भी उसी तरह सुन्दर होगा," महाराज कहते "जिसका सब कर्मों में सुन्दरता है उसका जप जमेगा।"

ठाकुर के शिष्यों में आपस में जो गहन प्रेम का सम्पर्क देखा है वह भूलनेवाला नहीं है। एक मजेदार घटना सुनाता हूँ, "उस दिन स्वामीजी की जन्मतिथि थी। मठ में स्वामीजी के कमरे के नीचे गंगा की तरफ वाला जो बरामदा है वहां पर सबेरे-सबेरे महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) और बाबूराम महाराज बेंच के ऊपर बैठ कर बातचीत कर रहे हैं। अचानक महाराज ने आकर महापुरुष महाराज से कहा, "तारक दा, आज एक मजा करना होगा।" महापुरुष महाराज ने पूछा, 'क्या?' महाराज ने कहा, "कुछ देर में ही अधिक भक्त आ जायेंगे। आपको धोती-कुर्ता पहनकर हाथ में एक छड़ी लेकर घुमाते हुए स्वामीजी के मन्दिर तक जाकर यहाँ वापस आना होगा। बहुत मजा आएगा।" बात मजा की होने से भी काम कठिन था, किन्तु महाराज को खुश रखने के लिए उनके सभी गुरुभाई सर्वदा सचेष्ट रहते। फलस्वरूप महापुरुष महाराज के समान गंभीर एवं संकोची व्यक्ति ने भी महाराज के इस कठिन आदेश को सानन्द मान लिया। महाराज के निर्देशानुसार सब कुछ पहले से ही तैयार था—सुन्दर मलमल का तह किया हुआ (कमीज) कुर्ता, सुन्दर ढंग से काँछा दी हुई धोती, सोने के बटन, उस समय की रीति अनुसार पॉकेट वाच एवं छड़ी। धोती-कुर्ता पहनकर, बटन एवं पॉकेट वॉच यथास्थान लगाकर हाथ में छड़ी घुमाते-घुमाते महापुरुष महाराज धीरे-धीरे मठ भवन से स्वामीजी के मन्दिर तक चलकर गए, पुनः इस प्रकार चलकर वापस आकर महाराज के पास रिपोर्ट दे रहे हैं—"कोई पहचान ही न सका। अमुक (एक जन विशिष्ट भक्त) ने देखा किन्तु आँख घुमा ली।" इस तरह महापुरुष महाराज रस-रंगपूर्वक वर्णन कर रहे हैं, और महाराज एवं ठाकुर के अन्यान्य शिष्यगण एवं अन्य साधुगण वह सुनकर हो-होकर हँस रहे हैं।

महाराज के मजाक करने की और भी घटनाएं याद आ रही हैं। उसमें से विज्ञान महाज (स्वामी

विज्ञानानन्द) एवं गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्द) से सम्बन्धित दो घटनाएँ अभी बोलूँगा। विज्ञान महाराज तब मठ में स्वामी जी के मंदिर का काम देख रहे थे। मठ में तब स्वामी अभेदानन्द जी भी हैं। प्रातःकाल ठंड का दिन; महाराज मठ भवन के दुमंजिले में गंगा की ओर वाले बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे हुए हैं। विज्ञान महाराज के लिए कलकत्ता से एक गरम कुर्ता बनवाकर लाया गया है। कुर्ता देख कर महाराज अत्यन्त खुश हैं। मुझसे कहा, "देखो सुज्जि, पेसन* के साथ थोड़ा मजाक करना होगा। तुम गंगाजल का कमंडलु ठीक कर रखो। पेसन की यह जमा 'सम्प्रदान' करना होगा।" अचानक देखा गया रामलाल-दादा** मठ-घाट में नौका से उतर रहे हैं। रामलाल-दादा को देखकर महाराज बहुत खुश हैं। कहा, "बहुत अच्छा हुआ, रामलाल दादा ही सम्प्रदान करेंगे।" रामलाल-दादा दुमंजिले में आकर पहुँचे। थोड़ी-सी बात-चीत के बाद ही महाराज उन्हें किस प्रकार सम्प्रदान करना होगा यह सब समझाने लगे। इसी बीच विज्ञान महाराज भी आ गए हैं। उन्होंने देखा महाराज रामलाल-दादा के साथ आहिस्ता-आहिस्ता कुछ बोल रहे हैं। महाराज को वे जानते ही थे और महाराज के साथ रामलाल दादा की विनोद प्रियता को भी वे जानते थे उन्हें संदेह हुआ कि हो न हो मेरे ऊपर ही कुछ षड्यन्त्र होने वाला है। उन्होंने सीधा महाराज से पूछा, "मुझे लेकर क्या योजना बना रहे हैं?" महाराज ने भले मानुष के से स्वर में कहा, "तुम्हारे लिए एक नया कुर्ता मँगवाया है, उसे तुमको दूंगा, इसमें योजना का क्या है? विज्ञान महाराज नया जामा किसी तरह भी नहीं लेंगे, और महाराज भी छोड़ेंगे नहीं। उनको डर है, जामा के पीछे महाराज की कोई चालबाजी अवश्य ही होगी। अन्त तक बहुत समझा-बुझाकर महाराज ने उनको राजी कराया। महाराज के आदेशानुसार विज्ञान महाराज ने टोपी, गलाबंध कोट आदि खोलकर नया गरम जामा पहना। महाराज ने रामलाल-दादा को आँख से इशारा किया, मुँह से कहा, "तो फिर दादा, अब हो जाय।" रामलाल-दादा कमंडल से गंगाजल छिटककर महाराज द्वारा रचित क्या-क्या सब उद्भट मंत्र-उच्चारण करना शुरू किए। विपदग्रस्त विज्ञान महाराज ने यह सब देख, दौड़कर भागने की चेष्टा की। महाराज भी कुर्सी छोड़कर उसके पीछे दौड़ने लगे। तभी विपरीत दिशा से अभेदानन्द महाराज वहाँ आ उपस्थित हुए। दोनों के बीच में पड़कर विज्ञान महाराज का छोटे बच्चे के समान हाथ-पैर छटपटाना, वह क्या ही दृश्य था। देखकर उपस्थित सब हँस-हँसकर लोट-पोट हो गए।

गंगाधर महाराज के साथ महाराज का कौतुक खूब जमता था। एक बार महाराज के निर्देशानुसार गंगाधर महाराज सारगाछी से बलराम मन्दिर आए हैं। वे अस्वस्थ थे। उनकी चिकित्सा के लिए महाराज ने उन्हें कलकत्ता बुलाया है। कुछ महीने चिकित्सा के बाद स्वस्थ होकर गंगाधर महाराज सारगाछी वापस जाने के लिए व्यग्र हो उठे। जिस दिन ही यात्रा का दिन स्थिर होता, महाराज उसी दिन किसी-न-

---

*विज्ञान महाराज को स्वामीजी, महाराज एवं महापुरुष महाराज पेसन नाम से पुकारते। उनके पूर्वाश्रम का नाम था 'हरिप्रसन्न'। हरिप्रसन्न' से 'प्रसन्न' से 'पेसन' नाम हुआ।

**श्रीरामकृष्ण का भतीजा रामलाल चट्टोपाध्याय।

—संपादक, उद्बोधन

किसी उपाय से गंगाधर महाराज की यात्रा रोक देते। एक दिन गंगाधर महाराज भोर के समय निकलने ही वाले हैं, उसी समय देखते हैं एक पड़ोसी बोस परिवार का एक छोटा बच्चा सीढ़ी के पास खड़ा होकर उन्हें एक आँख दिखा रहा है। गंगाधर महाराज का फिर उस दिन जाना नहीं हुआ। और दूसरे दिन वे जाने के लिए तैयार हुए, उसी समय किसी ने उनके सामने एक चित्र उठाकर दिखाया। वह चित्र एक केंकड़ा का था। यह सब अमंगलसूचक है। गंगाधर महाराज यह सब खूब विश्वास करते, महाराज यह जानते, इसीलिए उन्हीं की बुद्धि से सब घटना घटित होती।

किन्तु सबसे अधिक मजा आया था और एक बार। महाराज उस समय बलराम बाबू की जमींदारी उड़ीसा के कोठार नामक स्थान में हैं। महाराजके आह्वान पर गंगाधार महाराज कुछ दन के लिए वहाँ आए हैं। गंगाधार महाराज ने सारगाछी वापस जाने के पहले दिन महाराज से इस सम्वन्ध में कहा। गुरुभाई को नजदीक में पाकर महाराज अत्यन्त खुशी में है, इसीलिए और कुछ दिन रह जाने के लिए कहा। किन्तु गंगाधर महाराज ने कहा कि इस दिन उसको वापस जाना ही होगा। महाराज बार-बार उनके वापस जाने के दिन को बढ़ा देने के लिए कहते फिर भी वे राजी नहीं हुए। निर्दिष्ट दिन में महाराज से विदाई लेकर वे पालकी से स्टेशन की ओर रवाना हुए। रात का समय है, कोठार से भद्रक रेलवे स्टेशन कुछ मील दूर ही है। कहार पालकी लेकर आगे चले जा रहे हैं, कुछ दूर जाने के बाद ही गंगाधर महाराज सो गए। कहारों को महाराज पहले से बोल रखे थे कि पालकी में गंगाधर महाराज सो जाने के बाद वे लोग पालकी को वापस कोठार के घर में ले आए। उसी के अनुसार कहारों ने कोठार के जमींदार के घर पालकी वापस लाकर रखी। गंगाधर महाराज ने सोचा, पालकी स्टेशन में आ पहुँची है। पालकी से बाहर आते ही देखते हैं कि सामने महाराज खड़े हुए हैं। चेहरे पर अत्यन्त आश्चर्य भाव लेकर महाराज ने गंगाधर महाराज से कहा, "क्या हुआ भाई, वापस जो आ गए !" गंगाधर महाराज समझ गए, यह सब महाराज का ही षड्यंत्र है। उस दिन फिर गंगाधर महाराज का सारगाछी जाना नहीं हुआ। इद तरह की घटनाएँ और भी बहुत हैं।

वस्तुतः 'राखाल राज' की रसिकता का अन्त नहीं था। वे सब तरफ से ही एक रसमय पुरुष थे। यह रस जिस प्रकार हँसी-मजाक, रंग-कौतुक के द्वारा प्रकाशित होता, उसी प्रकार प्रकाशित होता उनके गंभीर अंतर्लीन आध्यात्मिकता से भी। ठाकुर के समान उनका मन भी हर समय भाव राज्य में ही विचरण करता, उसी भाव के राज्य से हम लोगों के राज्य में वे मन को नीचे उतार कर रखते इसी हँसी-मजाक, रंग-कौतुक के माध्यम से। मात्र महारज ही क्यों, ठाकुर के सभी शिष्यगण इसी प्रकार के थे। एक हाथ से जगत् का रस, दूसरे हाथ से ईश्वर रस लेकर इस संसार को 'धोखे की टट्टी' से 'मजा की कुटिया' में परिणत करने का दृष्टान्त वे लोग दिखा गए हैं।

ठाकुर के पार्षदों के साधारण आचरण एवं व्यवहार देखने से उनकी आध्यात्मिक अनुभूति वाला हिस्सा हमेशा समझ में नहीं आता था, किन्तु उन लोगों का जीवन आध्यात्मिक अनुभूति से भरपूर है। एक घटना याद आती है। महाराज बलराम मंदिर में हैं। बलराम मन्दिर के बड़े कमरे में (हॉल घर में) दो खाटें थीं—एक बड़ी एवं दूसरी छोटी, जिस प्रकार दक्षिणेश्वर के ठाकुर के कमरे में हैं। महाराज बड़ी खाट पर एवं मैं नीचे फर्श पर सो रहा हूँ। कितनी रात

है पता नहीं, अचानक नींद टूट गयी है, देखा महाराज अपनी बड़ी खाट से छोटी खाट के ऊपर आकर बैठे हुए हैं। क्या बात है समझ नहीं पाया। कुछ देर चुप रहकर कुछ आगे की ओर गया किन्तु महाराज कुछ बात नहीं कर रहे हैं। मैंने तम्बाकू पीने के लिए पूछा किन्तु महाराज ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बाद महाराज ने स्वयं कहा, "क्या हुआ समझ में नहीं आ रहा है, थोड़ी देर पहले नींद टूट गई। एकदम साफ-साफ देखा, ठाकुर छोटी खाट के सामने खड़े हुए हैं, किन्तु कोई बात नहीं की। ठाकुर का श्रीमुख गंभीर था। ठाकुर चले गए। तब से मैं सोच रहा हूँ कि यह क्या हुआ? ठाकुर आये और कुछ न कहकर चले गये! ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ, आज क्या हुआ?" यह कहकर महाराज फिर चुप हो गये। महाराज की बात सुनकर मुझे लगा कि ठीक है ठाकुर को तो नहीं देख पाया, किन्तु वे जब इस कमरे में आकर खड़े थे तब उनके शरीर की हवा का स्पर्श तो कम-से-कम मेरे शरीर में हुआ है!

श्री श्री माँ ने जब देहत्याग (२१ जुलाई १९२०, रात डेढ़ बजे) किया तब उस समय महाराज भुवनेश्वर में थे किन्तु वे समझ गए थे। उस दिन आधीरात को देखा, महाराज बिछौना से उठकर आकर आराम कुर्सी पर बैठे हुए हैं। मैंने पूछा था, "इस तरह क्यों बैठे हुए हैं? कुछ कष्ट हो रहा है?" महाराज ने उत्तर नहीं दिया। गंभीर होकर बैठे रहे। केवल एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा, "रात अभी कितनी है? मालूम नहीं क्यों, माँ के लिए मन कैसा-कैसा हो रहा है। वे कैसी हैं कौन जाने!" महाराज को गंभीर देखते ही हम लोगों को डर लगता और तब कुछ भी पूछने के लिए साहस ही नहीं होता था, फिर भी उस समय उनका मन हल्का करने के लिए कहा, "हुक्का सजाकर ले आऊँ महाराज?" महाराज ने कुछ नहीं कहा। और कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। धीरे-धीरे उनके कमरे से बाहर आ गया। सारी रात आराम कुर्सी में इसी प्रकार बैठे रहे। शीत, ग्रीष्म, वर्षा—सब समय वे भोर में उठकर चहलकदमी करते। यह उनका नित्य का अभ्यास था, किन्तु उस दिन भोर में चहलकदमी के लिए भी नहीं गए। थोड़ा दिन चढ़ते ही कलकत्ता से शरत् महाराज का टेलिग्राम आया—श्री श्री माँ ने मर्त्यलीला का अवसान किया है। महाराज और भी गंभीर हो गए। चेहरा गंभीर वेदना से स्तब्ध होने लगा। कुछ देर बाद कहा, "मैं हविष्यान्न करूँगा।" तीन दिन तक तक उन्होंने कुछ भी बातचीत नहीं की। बारह दिन उन्होंने हविष्यान्न खाया था, जूता का व्यवहार नहीं किया। एक दिन कहा था, "इतने दिन तक पहाड़ की ओट में था।"

ठाकुर ने कहा था, "प्रत्येक अवतार में राखाल लीला सहचर होकर आया है। वह नित्यसिद्ध है। भगवान की नित्य लीला का सहचर है। उसके संबन्ध में माँ ने (जगदम्बा ने) कितना कुछ (मुझे) दिखाया है। उसकी सब बातें कहने के लिए निषेध है।" एक बार किसी भक्त ने ठाकुर से पूछा था, लड़कों में कौन कितना आगे बढ़ा है। ठाकुर पंचवटी में बैठे हुए थे। वहाँ पर मिट्टी में एक छोटी लकड़ी से पहले एक लाइन खींची और कहा, "यह इसकी (स्वयं की) अवस्था है।" इसी रेखा के नीचे और एक लाइन खींची पहले वाले लाइन से थोड़ी छोटी ओर कहा, 'यह नरेन्द्र की है।" इसी तरह और भी कुछ लाइन खींची जो क्रमशः एक के बाद एक छोटी होती चली गयी थी। एक-एक कर कहते चले गए कौन सी लाइन किस की है—बाबूराम की, तारक की, लाटु की, शरत् की, शशी की इत्यादि किन्तु महाराज के नाम से कोई लाइन नहीं खींची। भक्त ने पूछा, "और राखाल की?"

ठाकुर हँसते हुए सबसे अंत में एक लाइन खींची। वह सब रेखाओं से बड़ी थी, यहाँ तक कि प्रथम रेखा से भी। कहा, "यह राखाल की।" इस घटना के बारे में बाद में भक्त ने श्री श्री माँ को बताया। माँ ने सुनकर कहा, "ठीक ही तो! राखाल पुत्र जो है!" स्वामीजी कहते, आध्यात्मिकता में राखाल हम सब से बड़े हैं।" उनकी बातों का अर्थ वे ही जानें, हम कैसे समझेंगे!

बेलूड़ मठ, भुवनेश्वर मठ, काशी अद्वैत आश्रम, सेवाश्रम, कनखल सेवाश्रम, मद्रास मठ, बलराम मन्दिर—प्रत्येक स्थान इस युग का महातीर्थ है। होगा ही तो! वहाँ भगवान के मानस पुत्र ने निवास किया है। लीला की हैं, चहल-कदमी की है। और बेलुड़ मठ! शिवावतार स्वामी जी सह ठाकुर के सब शिष्यों की पदधूलि से पवित्र—जगज्जननी श्री श्री माँ की पदधूलि से पवित्र, इससे बड़ा तीर्थ और कहाँ है? पृथ्वी के बीच वहीं तो देवलोक है। ❀

# रामकृष्ण भावान्दोलन

श्रीमत् स्वामी लोकेश्वरानन्द

[श्रीमत् स्वामी लोकेश्वरानन्दजी महाराज, रामकृष्ण मिशन इन्स्टिट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता के प्रधान हैं। उनके द्वारा लिखित इस अंग्रेजी लेख 'द रामकृष्ण मुवमेन्ट' का यह हिन्दी रूपान्तर है। रूपान्तरकार हैं— डॉ० केदारनाथ लाभ।]

रस्किन ने कभी कहा था, 'एक सेना की अपेक्षा एक भाव कहीं अधिक शक्तिशाली है।' इस कथन में निश्चय ही बहुत सच्चाई होगी, अन्यथा श्रीरामकृष्ण का अपने समकालीन व्यक्तियों पर पड़े प्रभाव की व्याख्या करना कठिन है। वे एक विनम्र व्यक्ति थे जिनके पास उन्नीसवीं शताब्दी के बंगाल के परिष्कृत, अंग्रेजी-शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों की सराहना पाने योग्य कुछ भी नहीं था, तथापि उनमें से सर्वोत्तम व्यक्तियों को हम उनके सम्मोहन में पड़े हुए पाते हैं। सब से पहले प्रिन्सिपल हेस्टी का उदाहरण लें: पश्चिमी परम्पराओं में गहराई से जड़ जमाए हुए और पाश्चात्य दर्शन के उत्कृष्ट शिक्षक, एक ईसाई मिशनरी, वे अपने समय के बुद्धिजीवियों में श्रीरामकृष्ण से मिलनेवाले प्रथम व्यक्ति थे। वे उनके व्यक्तित्व से इतने सम्मोहित थे कि स्कॉटिश चर्च कॉलेज में अपने छात्रों को उनका एवं उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों का उल्लेख करने से अपने को वे रोक नहीं सके। और यह भाग्य की कैसी रहस्यमय विशिष्टता थी कि उन्हीं छात्रों में नरेन्द्रनाथ दत्त थे, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के रूप में विख्यात हुए तथा जो श्रीरामकृष्ण के मुख्य शिष्य थे। केशव सेन इस प्रसंग में दूसरे उदाहरण हैं। वे स्वयं ही एक बहुत बड़े धार्मिक नेता थे, वस्तुत: इतने बड़े कि जब वे व्याख्यान-यात्रा के क्रम में इंग्लैंड गये तब इंग्लैण्ड के समाचार-पत्रों ने 'पूरब के द्वितीय ईसा मसीह' कह कर उनका स्वागत किया। सभी धर्म ईश्वर की ओर ले जाने वाले अनेकानेक मार्ग हैं, और ईश्वर का अन्वेषी उनमें से किसी एक को, जिसे वह सर्वोत्तम समझता है, चुन सकता है। उन्होंने इस विचार पर भी जोर दिया कि केवल सतह पर धर्म भिन्न दीखते हैं, किन्तु सबके भीतर एक समान सत्य है, जो उनकी सारवस्तु है।' यह सारवस्तु ही महत्व रखती है न कि वे अभिवृद्धियाँ या उपचय जो उनके ऊपर एकत्र हो गये हों।

श्रीरामकृष्ण ने लोगों से अन्य सभी वस्तुओं की उपेक्षा कर इसी सारातत्त्व पर अपना चित्त स्थिर करने को कहा।

दूसरा महत्वपूर्ण भाव जिसका श्रीरामकृष्ण ने उपदेश दिया, वह यह था कि मनुष्य को अपने संगी साथियों और अपने समान मनुष्यों के साथ वैसा ही आदर एवं स्नेह के साथ व्यवहार करना चाहिए जैसा आदमी ईश्वर के साथ व्यवहार करता है, क्योंकि, श्रीरामकृष्ण के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति में देवत्व है, चाहे वह निम्न हो या उच्च। अपने संगियों के प्रति आदर तथा विनम्रतापूर्वक उनकी सेवा करना दूसरों के साथ उनके व्यवहार की आधारशीला हो गये।

श्रीरामकृष्ण ने जो उपदेश दिया वह सरल और प्रभावशाली था, किन्तु यह उनका व्यक्तित्व था जिसने उनके भावों को सबलता प्रदान की थी। अपने उपदेशों के वे सर्वोत्तम उदाहरण थे और वे अपने उपदेशों से कहीं अधिक थे। लोग उनके वचनों को सुनना पसन्द करते थे, क्योंकि वे उस अधिकार से बोलते थे जो व्यक्तिगत अनुभूति से प्राप्त होता है। यदि उन्होंने जो कुछ कहा वह सरल और सुस्पष्ट था, तो इसका कारण यह था कि उन्होंने अन्य लोगों की भाँति अनुमान नहीं लगाया, अथवा सुनी-सुनायी सूचनाओं पर निर्भर नहीं किया। उनकी उपस्थिति में रहना अपने आप में एक आध्यात्मिक अनुभव था। श्रीरामकृष्ण के विषय में कुछ भी पढ़ना ईश्वर के साथ चलने के समान है। महात्मा गाँधी इस अनुभव का वर्णन 'ईश्वर को आमने-सामने देखने' के समान करते हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि सभी मतों के लोग उनके पास इकट्ठे हो गये— हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि। उन्होंने पांडित्य-पूर्ण ग्रंथों में ईश्वर के सम्बन्ध में उठाये गये जटिल प्रश्न पाये, किन्तु श्रीरामकृष्ण ने उन्हें सदा सही उत्तर दिये। उनके उत्तरों से लोग उनके ज्ञान की गहराई पर आश्चर्य से भर उठते थे। उन्हें यह विश्वास करना कठिन हो जाता था कि श्रीरामकृष्ण ने विद्यालय की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त की थी और न तो अधिक पुस्तकें ही पढ़ी थीं। यह एक मनोरंजक बात है कि वे किसी का खण्डन करते प्रतीत नहीं होते थे, बल्कि लोगों को केवल स्मरण दिलाते कि वास्तविक लक्ष्य, वे जहाँ हैं उससे और आगे है और उन्हें सदा आगे बढ़ते जाना चाहिए। दूसरी जगह, भले ही धर्म मात्र खण्डन-मण्डन हो, लेकिन उनके साथ धर्म "जीता-जागता" 'अस्तित्व और संभावना' था। इसीलिए सभी सम्प्रदायों के लोग उनके पास प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन के लिए इकट्ठे हो गये थे। हिन्दू सोचते थे कि अब तक धरती पर विचरण करनेवालों में से सर्वोत्तम हिन्दू हैं। अधिक विस्मय की बात यह है कि मुसलमान, ईसाई तथा अन्य धार्मिक समूहों के सदस्यों ने भी सोचा कि वे श्रीरामकृष्ण) उनमें से ही एक हैं— ऐसे एक, जो उनके सर्वोत्तम आदर्श का प्रतिनिधित्व करते हैं! इस सम्बन्ध में, वस्तुतः श्रीरामकृष्ण एक विलक्षण व्यक्ति थे। जैसा कि श्री अरविन्द ने कहा था, 'श्रीरामकृष्ण अकेले अपने में सब के संश्लेषण का प्रतिनिधित्व करते हैं।' इस प्रकार श्रीरामकृष्ण अपने ही जीवन-काल में एक नये भाव-आन्दोलन के, जिसने धर्म में परस्पर विरोधी विचारों का संश्लेषण किया था, केन्द्रबिन्दु हो गये तथा उन्होंने विभिन्न धार्मिक परम्पराओं को पुनर्जीवित भी किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उन्होंने स्वयं ही रामकृष्ण-भावआन्दोलन को प्रवर्तित किया।

श्रीरामकृष्ण प्रशंसा की नहीं, बल्कि उन मनुष्यों की खोज कर रहे थे, जो उनके संदेशों को समझ पाते तथा उन संदेशों के अनुसार आचरण

करने का प्रयास करते। भावी पीढ़ियों के सौभाग्य से ऐसे लोग आये। नरेन, जो बाद में प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द हुए उन लोगों में शीर्षस्थ थे। वे लोग मुश्किल से एक दर्जन या इसी के लगभग थे, किन्तु श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपने पास आये विशाल जन-समूह में से चुना था। उन्हें चुन लेने के बाद उन्होंने बड़ी सावधानी के साथ उन्हें प्रशिक्षित किया ताकि वे उन महान भावों को आत्मसात् कर सकें जिनका श्रीरामकृष्ण प्रतिनिधित्व करते थे। क्या उन्होंने यह कल्पना की थी कि किसी दिन उन भावों का विश्व की धार्मिक विचार-धारा पर एक महान प्रभाव पड़ेगा? संभवतः उन्होंने की थी। उनके 'वचनामृत' में उनकी वार्ताएँ जिस प्रकार लिपिबद्ध की गयी हैं, उनमें ऐसी संभावना के बारे में संकेत बिखरे पड़े हैं। जिन युवजनों को उन्होंने अपने भावों के संरक्षण एवं प्रसारण के लिए चुना, वे ऊपरी तौर से अति साधारण थे, किन्तु उनमें उनका (श्रीरामकृष्ण का) महाविश्वास था और बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि अपात्र या अयोग्य व्यक्तियों पर उनका विश्वास नहीं हुआ था। उनकी महासमाधि के सात वर्षों के अन्दर ही, उनका नाम सारे विश्व में विख्यात हो गया—सर्वप्रथम उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द के द्वारा और इसके बाद प्रो० मैक्समूलर के द्वारा। जैसा कि हमलोग जानते हैं, स्वामी विवेकानन्द ने सन् १८९३ ई० में शिकागो में आयोजित धर्म-संसद के प्रतिनिधि के रूप में अमेरिका में सनसनी फैला दी। उन्होंने सारे अमेरिका में शब्दशः ऐसा तूफान मचा दिया कि उस देश के समाचार पत्रों ने उन्हें 'तूफानी हिन्दू' की उपाधि दे दी। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के भावों का प्रचार पहले अमेरिका में और बाद में इंग्लैण्ड तथा यूरोप में किया। गिरजाघर, विश्वविद्यालय तथा सभी प्रकार की विद्वद् समितियों ने उनके लिए अपने द्वारा खोल दिये और उनके श्रोताओं समक्ष यदि वे व्याख्यान देना चाहते तो इससे वे यदा-कदा ही अपने गुरु के नाम का उल्लेख करते, फिर भी, श्रीरामकृष्ण ज्ञात हो गये। किन्तु, यदि स्वामी विवेकानन्द अपनी प्रेरणा के स्रोत को प्रकट करने के अनिच्छुक थे, तो प्रो० मैक्समूलर को ऐसी कोई बाधा नहीं थी। श्रीरामकृष्ण के जीवन एवं उपदेशों पर विचार करते हुए उन्होंने 'नाइनटीन्थ सेन्चुरी' नामक पत्रिका में 'ए रीअल महात्मा' (एक वास्तविक महात्मा) शीर्षक एक निबन्ध लिखा। इतने महान् विद्वान् की लेखनी के द्वारा लिखित उस लेख ने स्वभावतः सम्पूर्ण शैक्षिक जगत् पूर्वी और पश्चिमी — का ध्यान आकृष्ट कर लिया। रातोंरात श्रीरामकृष्ण विद्वानों के बीच अध्ययन एवं अनुसंधान के विषय हो गये। लोगों ने स्वीकार कर लिया कि धर्म के आकाश में एक महान् नक्षत्र का उदय हो गया है जिसका ध्यानपूर्वक अवलोकन करने की आवश्यकता है।

इसी बीच, पश्चिमी देशों में स्वामी विवेकानन्द कीसफलता के फलस्वरूप भारत में महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया शुरू हो गयी। पहली बार, भारत अपने दार्शनिक चिन्तनों की महान् सम्पदा के प्रति जागरूक हुआ। उसने अनुभव किया कि उसे अपने प्रति लज्जित होने का कोई कारण नहीं हैं। उसके पास भले ही पश्चिमी देशों की भाँति सैनिक और आर्थिक शक्ति नहीं हो, किन्तु उसके पास बौद्धिक एवं सांस्कृतिक शक्ति है, जो अपनी गहराई और उच्चता में विश्व में अद्वितीय है। यह अन्वेषण भारत की पतनशील चेतना के लिए एक टॉनिक (शक्तिवर्धक) के समान था। फिर देश में उत्साह का एक ज्वार उठने लगा जो अनुपात में अपूर्व था। यह भारत में वास्तविक पुनर्जागरण का प्रारम्भ था जिसे गाँधी, टैगोर, अरविन्द और नेहरू सरीखे लोगों ने सुदृढ़ किया और सफल बनाया।

भारत लौटने पर स्वामी विवेकानन्द ने जो सबसे पहला कार्य किया वह था रामकृष्ण मिशन की स्थापना करना। यह एक ऐसा संगठन है जिसका विशेष अभिप्राय श्रीरामकृष्ण के भावों का अध्ययन एवं आचरण करना है। सन् १८९७ ई० में जब इसकी स्थापना हुई तब इस में कुल एक दर्जन या इसी के लगभग संन्यासी थे और वास्तव में इसे कोई सम्पत्ति नहीं थी। अभी भी ईसाई संगठनों की तुलना में यह कम है, किन्तु यह एक ऐसा नाम है जिसे सारे भारत में और बाहर भी आदर प्राप्त है। लोकोपकारी कार्यों या श्रीरामकृष्ण के संदेशों (जो भारत के संदेश भी हैं) के प्रचार में निरत इसके संन्यासी सारे संसार में फैले हुए हैं। भारत के बाहर जहाँ वे कार्य कर रहे हैं, उनमें कुछ देशों के नाम ये हैं: इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड, अमेरिका, मलेशिया, फिजी, श्रीलंका, रोडेशिया और बंगलादेश। कई अन्य देश (अनेक देशों में एक का नाम जापान है।) उन्हें अपने यहाँ चाहते हैं, किन्तु भारत में इतने अधिक कार्य करने हैं कि यद्यपि जहाँ तक संभव हो उतने अधिक देशों में वे फैल जाना चाहेंगे, फिर भी मिशन को कई देशों को प्रतीक्षासूची (Waiting list) में रखना पड़ रहा है। कौतूहल की बात यह है कि बुलावा सदैव उन्हीं देशों से आता है—ऐसा नहीं है कि उन देशों में संन्यासीगण अपने आप जाते हैं। इस से भी बढ़कर यह बात है कि जब तक उन देशों में कार्य करते हैं, तब तक उनका भरण-पोषण वहाँ के लोग ही करते हैं। उनके कार्य में भारतीय मुद्रा के खर्च होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

तथ्यतः ये संन्यासी भारत या विदेशों में क्या करते हैं? यह तुरन्त स्पष्ट कर देना चाहिए कि रामकृष्ण मिशन धर्म-परिवर्तन—सामान्य बोल चाल की भाषा में जिस अर्थ में यह शब्द ग्रहण किया जाता है—में विश्वास नहीं करता। यदि कुछ भी, ये संन्यासी बनाने की कोशिश करते हैं तो वह है 'एक हिन्दू को और अधिक श्रेष्ठतर हिन्दू; एक मुसलमान को और अधिक बेहतर मुसलमान, एक ईसाई को और अधिक अच्छा ईसाई' आदि बनाने की कोशिश। दूसरे शब्दों में, वे लोगों से धर्म के मूल में आने को कहते हैं, जो जिस किसी भी प्रकार से ईश्वर तक पहुँचने की कोशिश करना है, न कि उसके सम्बन्ध में केवल गप लड़ाना। वे विभिन्न संतपैगम्बरों और विभिन्न धर्मशास्त्रों को यह दिखाने के लिए उद्धृत करते हैं कि किस प्रकार वे सार रूप में एक ही वस्तु का उपदेश देते हैं। उनकी भाषा में भिन्नता होती है, किन्तु उनका तात्पर्य एक समान ही होता है। वे किसी मत को बदलना नहीं चाहते, बल्कि इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं कि एक मत और दूसरे मत के बीच काफी अधिक समानता है। धर्म के सभी विषयों में उनका दृष्टिकोण आदर और सहानुभूति का है। इस दृष्टिकोण के कारण, गैर हिन्दू भी उनके साहचर्य में अपनापन का अनुभव करते हैं, वस्तुतः वे इन संन्यासियों को चाहते हैं तथा उनकी सेवा के लिए उन्हें प्रायः आमन्त्रित किया करते हैं। आजकल ईसाई जगत में एकतावाद एक सक्रिय शक्ति बन गया है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि इसे पोप जॉन द्वारा औपचारिक आशीर्वाद देने के काफी पहले, श्रीरामकृष्ण ने इसका उपदेश दिया और इसे आचरित किया था। यद्यपि साथ ही उनका सार्वभौमिकतावाद या ऐक्यवाद अधिक व्यापक था, क्योंकि इसने केवल कुछ सम्प्रदायों को ही नहीं बल्कि सभी धर्मों के सभी सम्प्रदायों को अंगीकार किया।

आज रामकृष्ण-भावान्दोलन इस देश में और बाहर के देशों में भी शान्ति और सुख के लिए एक महान शक्ति बन गया है। भारत में जहाँ विभिन्न

धार्मिक सम्प्रदाय और समुदाय रहते हैं, एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता और भ्रातृत्व का भाव बहुत प्रासंगिक हो गया है। दूसरा कारण, जो इसकी लोकप्रियता में बहुत अधिक योगदान करता है, वह है जीवन की प्रत्येक मार्मिक समस्या के प्रति इसके द्वारा विवेकपूर्ण दृष्टिकोण का प्रयोग करना। श्रीरामकृष्ण से प्रभावित लोग धर्म को एक प्रकार का विज्ञान मानते हैं जो अध्ययन एवं अन्वेषण के लिए सर्वथा मुक्त है। वे यह नहीं मानते कि धार्मिक सत्यों को विश्वास के बल पर स्वीकार करना होगा; बल्कि वे घोषणा करते हैं कि किसी चीज को अंतिम रूप से तब तक स्वीकार करने की जरूरत नहीं है जब तक उसका परीक्षण नहीं हो जाता और उसकी सत्यता नहीं प्रमाणित हो जाती। व्यक्तिगत और प्रत्यक्ष अनुभूति ही धर्म को स्वीकार करने योग्य एकमात्र प्रमाण है।

यह तथ्य भी कि यह भावान्दोलन ईश्वरानुभूति के साधन के रूप में निःस्वार्थ सेवा को बड़ा महत्व देता है, अनेक लोगों को आकर्षित करता है। जाति या सम्प्रदाय या भाषा का लिहाज किए बिना इसके द्वारा की जानेवाली सेवा सबके लिए खुली हुई है। न केवल रामकृष्ण मिशन, बल्कि सैकड़ों संस्थाएं जो आज सम्पूर्ण देश में उठ खड़ी हुई हैं, इस प्रकार की सेवा कर रही हैं। बुद्ध के काल से ही भारत में यह लगभग अतुलनीय है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इनमें से अधिकांश श्रीरामकृष्ण के नाम से जुड़ी हुई हैं और उनसे प्रेरणा ग्रहण करती हैं।

ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, रामकृष्ण भावआन्दोलन और अधिक शक्तिशाली होता जाता है। सारे देश में लोग चाहते हैं कि मिशन और अधिक शाखा-केन्द्र—स्कूल, कालेज, अस्पताल, अनाथालय आदि-आदि खोले, क्योंकि वे जानते हैं कि जिस प्रकार की सेवा वे मिशन से पायेंगे, वह दूसरी जगहों से पानेवाली सेवा से अधिक अच्छी होगी। प्रायः सदैव उनके अनुरोध मुद्रा, भूमि और भवनों के प्रस्ताव से संलग्न रहते हैं, किन्तु मिशन सावधानी से आगे बढ़ता है और प्रचुरता के उद्भव को तब तक टालता रहता है जब तक कि उसके पक्ष में बाध्य कर देनेवाला कारण नहीं होता। इस तथ्य के अलावे कि इसे कार्यकर्ताओं (manpower) का अभाव है, यह इस बात को प्रश्रय देता है कि लोग स्वयं निःस्वार्थ सेवा की भावना से भरकर ऐसी संस्थाओं की स्थापना के लिए आगे आवें। प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से यह दर्शाती है कि यह भावना तेजी से फैलती जा रही है।

ज्यों-ज्यों भाव-आन्दोलन फैलता जाता है, धर्म के प्रति सामान्य लोगों की प्रवृत्ति भी बदल रही है। पहले धर्म को धार्मिक अनुष्ठान के बराबर माना जाता था, लेकिन अब लोग अनुभव करते हैं कि धर्म सार रूप में 'अस्तित्व और संभावना' का विज्ञान है, यह ऐसी कोई चीज है जिसका मनुष्य की आन्तरिक-प्रकृति से सम्बन्ध है। प्रार्थना की आदत अच्छी है, किन्तु यदि इसके साथ-साथ मनुष्य की प्रकृति में तदनुरूप उन्नति नहीं होती, तब इसका कोई अधिक मूल्य नहीं है। दूसरा परिवर्तन जो आजकल स्पष्ट दिखाई देता है, वह है—अपने धर्म के अलावे दूसरों के धर्म के प्रति लोगों की मनोवृत्ति में अधिक अपमान था, किन्तु अब यदि श्रद्धा नहीं भी हो, तो जिज्ञासा और पूछताछ का भाव है।

रामकृष्ण-भावान्दोलन की शक्ति रुपये-पैसों या मनुष्यों या संगठन में नहीं, बल्कि उन भावों में है जिन्हें प्रस्तुत करने का यह प्रचार करता है। ये भाव तेजी से फैलते जा रहे हैं, और जहाँ भी ये फैल रहे हैं, वहीं एक गहरा प्रभाव

( शेष पृष्ठ ३२ पर )

# श्री रामकृष्ण, धर्म और साम्प्रदायिकता

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सम्पादक, रामकृष्ण ज्योत, रामकृष्ण आश्रम,
राजकोट

एक दिन संध्या के समय श्री रामकृष्ण कलकत्ता की जरतला की मस्जिद के पास से गुजर रहे थे। वहाँ उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। एक फकीर ऊँची आवाज में प्रार्थना कर रहा था—

प्रभु, तुम आओ, प्रिय तुम दया कर के आओ। प्रार्थना में इतनी व्याकुलता थी कि उसकी आँखों से अश्रुओं की धारा वह रही थी। उसी समय श्री रामकृष्ण कलकत्ता के कालीघाट से उस रास्ते से लौट रहे थे। अचानक टाँगे को रुकवाकर वे नीचे ऊतर कर दौड़कर फकीर के पास आए। दोनों एक दूसरे के गले लपक-प्रेमाश्रु बहाने लगे। इस अद्भुत दृश्य को देखकर सब आश्चर्यचकित हो गए।

ई० सन् १८८५ में गले में कैंसर हो जाने से श्री रामकृष्णदेव को कलकत्ता के श्यामपुकुर मकान में ३१ अक्टूबर की सुबह लाया गया। वहाँ एक ईसाई संन्यासी श्री प्रभुदयाल मिश्र आए। लगभग ३५ वर्ष की उम्र, श्यामवर्ण मुख, विशाल आँखें, लम्बी दाढ़ी, हाथ में छड़ी यूरोपीय वस्त्रों में सुसज्जित, ऐसे संन्यासी ने श्री रामकृष्णदेव के कमरे में प्रवेश किया। श्री रामकृष्णदेव ने उनका स्वागत किया। वातचीत के दौरान श्री मिश्र ने तुलसीदासजी को उद्‌धृत करते हुए कहा, "एक राम उनके हजार नाम।" ईसाई जिन्हें गॉड कहते हैं, उन्हीं को हिन्दू राम, कृष्ण ईश्वर आदि नामों से बुलाते हैं। एक तालाब के अनेक घाट हैं। हिन्दू एक घाट से पानी पीते हैं और उसे जल कहते हैं, ईसाई दूसरे घाट से पानी पीते हैं उसे कहते हैं···वाटर, मुसलमान अन्य घाट से पानी हैं और उसे कहते हैं—पानी। इस तरह ईसाई के लिए जो गॉड हैं वही मुसलमान के लिए हैं अल्लाह।"

कमरे में बैठे हुए अन्य भक्तों ने मिस्टर विलियम के बारे में कहा जो प्रोटेस्टेंट ईसाई थे। उन्होंने गुड फ्रायडे के दिन (संभवतः १८७६) में श्री रामकृष्णदेव से भेंट की थी और श्री रामकृष्णदेव में उन्होंने ईसा मसीह का साक्षात् आविर्भाव देखा था। श्री मिश्र ने कहा, "इस समय उन्हें (श्री रामकृष्णदेव को) आप ऐसे देखते हैं किन्तु वे स्वयं ईश्वर हैं। आप लोग उन्हें पहचान नहीं पा रहे हैं। इस समय मैं उनमें ईश्वर को साक्षात् देख रहा हूँ। मैंने उन्हें दिव्य दर्शन में पहले भी देखा था। मैंने एक बगीचा देखा, जिसमें वे एक ऊँचे स्थान पर बैठे थे, नीचे एक अन्य व्यक्ति भी था किन्तु वह उतना बढ़ा हुआ नहीं था।" वातचीत के प्रसंग में श्री मिश्र ने पतलून के नीचे पहना हुआ गेरुआ रंग का वस्त्र दिखाया और अपनी व्यक्तिगत बातें कीं। उनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वाद में ईसा मसीह को अपना इष्टदेव मानकर वे क्वेकर सम्प्रदाय में शामिल हो गए। अपने एक भाई के विवाह के दिन शामियाने के टूटने से उस भाई की तथा उसके अन्य भाई की यहीं मृत्यु हो गई। उसी दिन

उन्होंने संसार का त्याग कर दिया था।

थोड़ी देर बाद श्री रामकृष्णदेव ने भावावस्था में श्री मिश्र से कहा तुम जिनके लिए प्रयत्न कर रहे हो वे अवश्य मिलेंगे।" मिश्र ने श्री रामकृष्णदेव में अपने इष्ट ईसा मसीह को देखा और उनकी स्तुति करने लगे। फिर उन्होंने भक्तों से कहा, "तुम उन्हें पहचान नहीं सके हो, वे साक्षात् ईसा मसीह हैं।"

श्री रामकृष्णदेव को दिव्य अनुभूति हुई थी कि भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग उनसे प्रेरणा पाएँगे और आध्यात्मिक प्रगति को प्राप्त करेंगे। उनके जीवनकाल में विविध धर्मों और सम्प्रदायों के बहुत से अनुयायी उनके पास आते थे। उनकी महासमाधि के बाद भी यह क्रम जारी है।

श्री रामकृष्णदेव के शिष्य स्वामी अखंडानंदजी जब हिमालय की यात्रा कर रहे थे तब उन्होंने एक मुसलमान की चाय की दुकान में श्री रामकृष्णदेव का फोटो देखा। स्वामी अखण्डानन्दजी ने आश्चर्य से इस बारे में पूछा तब वृद्ध मुसलमान ने उत्तर दिया, "मुझे नहीं मालूम कि यह किसका फोटो है। मैं बाजार गया था। जिस कागज में सब चीजें लिपटी हुई थी उसे खोलकर देखा तो उसमें यह फोटो निकल। उनकी आँखों पर मैं मुग्ध हो गया। मुझे लगा ये हमारे पैगम्बर जैसे होने चाहिए। इसलिए मैंने यह फोटो फ्रेम में मढ़वाकर दुकान में रखी है।"

स्वामी अखण्डानन्दजो भी जब तिब्बत की यात्रा कर रहे थे तब कैलास के पास छेकरा में ल्हासा का एक धनवान खाम्हा उनके पास श्री रामकृष्णदेव की फोटो देखकर भावावस्था में आ गया और उसे लगा कि यह तो साक्षात् ईश्वर के ही चक्षु हैं। उसने स्वामी अखण्डानंदजी से वह फोटो माँग ली और प्रतिदिन उसकी पूजा करने लगा।

१९०२ में श्री रामकृष्णदेव के शिष्य स्वामी अभेदानन्दजी महाराज न्यूयॉर्क में अपने अभ्यास कमरे में बैठे थे तब एक अमरिकन युवती ने प्रकाशन कार्य हेतु उस कमरे में प्रवेश किया। कमरे में प्रविष्ट होते ही मेज पर रखी हुई श्री रामकृष्णदेव की फोटो को देखकर वह आश्चर्यचकित हो गई, क्योंकि कुछ समय पहले बोस्टोन में उसे श्री रामकृष्णदेव के अद्भुत दिव्य दर्शन प्राप्त हुए थे। किन्तु तब उसे मालूम नहीं था कि वे हिन्दू योगी कौन थे। स्वामी अभेदानंदजी से उसने उनके गुरु के विषय में सब जानकारी प्राप्त की। बाद में उसने संन्यास ग्रहण किया। मिस लाग फ्रैंकलीन ग्लैन का नया नाम हुआ— सिस्टर देवमाता"। श्री रामकृष्ण संघ के विदेश केन्द्रों में उन्होंने बहुत सेवा की।

अमरिका की अन्य युवती को भी स्वप्न में एक भारतीय योगी के दिव्य दर्शन हुए थे। यह घटना स्वामी विवेकानन्द के अमरिका जाने के पूर्व की है। अनेक वर्षों तक वह उन्हें खोजने के असफल प्रयत्न करती रही। विवाह के पश्चात् वह न्यूयार्क के पास न्यूजर्सी के मोन्टक्लेयर में रहने आई। स्वामी विवेकानन्दजी के व्याख्यान सुनकर वह वेदांत की अनुयायी बन गई। रामकृष्ण संघ के संन्यासी उनके घर जाते। एक बार स्वामी विवेकानन्दजी के गुरुभाई स्वामी सारदानन्दजी ने बातचीत के प्रसंग में अपने गुरु श्री रामकृष्णदेव की फोटो दिखायी तब वह बोल पड़ी, "ओह यह तो वही चेहरा है।" बाद में उसने अपने दिव्य दर्शन की बात की। यह महिला (मिसेज व्हीलर) जीवन भर श्री रामकृष्णदेव की परम् भक्त रहीं।

अब सिर्फ भारतवर्ष के ही नहीं किन्तु समग्र विश्व के दार्शनिक धर्माचार्य विद्वान यहाँ तक कि ईसाई और मुसलमान भी श्री रामकृष्णदेव को

समन्वय के मसीहा के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। श्री रामकृष्णदेव ने अपने जीवन को प्रयोगशाला में विभिन्न धर्मों की साधना कर उसके चरम लक्ष्य की सिद्धि हासिल की और उसके बाद अपनी अनुभूति के आधार पर उन्होंने कहा--"जितने भाव, उतने पथ। सभी धर्म एक ही परम् सत्य की ओर ले जाते हैं, यद्यपि मार्ग अलग-अलग हैं।"

क्लाड एलन स्टार्क ने अपनी पुस्तक 'The God of All' में विस्तारपूर्वक लिखा है कि श्री रामकृष्णदेव का सभी धर्मों के प्रति उदार दृष्टिकोण जो उनकी ईश्वर की साक्षात् अनुभूति पर आधारित है, धर्मों की विविधता की समस्या के समाधान के लिए व्यावहारिक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है।"

बोस्टन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फ्रैंसिस क्लूनी ने लिखा था—"श्री रामकृष्ण अन्य धर्मों के अनुयायिओं के साथ रहते हूए अपने धर्म का पालन करने का आधार प्रस्तुत करते हैं। श्री रामकृष्ण कहते हैं, हम ईसा मसीह की ओर जितनी तीव्र गति से यात्रा करेंगे, उतना ही अधिक हम समझ पाएंगे कि ईसा मसीह चाहते हैं कि हम अपने धर्म की चहारदिवारी से निकलकर उन्हें ढूंढ़ने का प्रयास करें। इसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मुहमम्द दाऊद रहबर ने लिखा था—"सदियों की गुलामी के दौरान हिन्दुओं के धार्मिक विचारों को मुसलमान और ईसाइयों ने हीन दृष्टिभाव से देखा है। राजनैतिक स्वाधीनता मिलने के पश्चात् यह स्थिति बदल गई है। हिन्दुओं के धार्मिक प्रयत्नों की तीव्रता ने गौरव प्राप्त किया है। क्या सीधे और सरल रामकृष्ण अपने आप में पूर्ण वैज्ञानिक नहीं थे? उनके पवित्र जीवन में हम धर्म और विज्ञान का एक समन्वय देखते हैं।"

कलकत्ता के विद्वान श्री होसेनुर रहमान अपनी पुस्तक 'The Symbol of harmony of Religion में विस्तार से लिखते हैं कि श्री रामकृष्ण साम्प्रदायिक समन्वय के उद्‌गम स्थान हैं।

आज हम बहुत ही कठिन परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। ऐसा धर्म-मन्दिर बनाने की आवश्यकता है जिसमें हिन्दू और गैर हिन्दू एक परम् चैतन्य की आराधना में हाथ मिलाएँ! यह प्रेरणा हमें श्री रामकृष्णदेव के पास से मिलेगी। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान प्रो० मैक्समूलर श्री रामकृष्ण के विषय में लिखे गए अपने लेख में लिखते हैं, श्री रामकृष्ण के वचनों द्वारा सिर्फ उनकी विचारधारा ही हमारे समक्ष प्रकट नहीं होती, किन्तु करोड़ों मानवों की श्रद्धा और आशा प्रकट होती है, तब उस देश के भविष्य के लिए हमें वास्तव में आशा की किरणें दिखाई देती हैं। ईश्वर प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है ऐसा भाव यदि बहता रहे तो यही ऐसी सर्वसामान्य भूमिका है जिस पर निकट समय में भविष्य के महान धर्म-मन्दिर की स्थापना होगी और उस मन्दिर में हिन्दू और गैर हिन्दू एक परम चैतन्य की आराधना करेंगे, हृदय से हृदय मिलेंगे ऐसी हम आशा कर सकते हैं।"

श्री रामकृष्णदेव के सर्वधर्मसमन्वय के भाव को दृष्टि में रखते हुए स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मठ और मिशन के कार्यों में और आदर्श में साम्प्रदायिक एकता को महत्व दिया है। अपने गुरुभाई के साथ वार्तालाप के दौरान उन्होंने कहा था--जगत् के सभी धर्मों को एक अक्षय सनातन धर्म का रूपान्तर मात्र जानकर समस्त धर्मावलम्बियों को मैत्री स्थापित करने के लिए श्री रामकृष्ण ने जिस कार्य की उद्भावना की थी, उसी का परिचालन संघ का व्रत है।

# सुख की खरीदारी

गोवर्धन प्रसाद वक्ष
कवर्धा (म० प्र०)

मेरे अपने
छोटे और बड़े
सभी मुझ से
नाराज हैं
क्योंकि
मैंने उन्हें सुख खरीद कर
नहीं दिया।

एक दिन
सबको साथ ले
मैं सुख खरीदने
बाजार गया
दुकानदार बोला
सुख
मेरे पास नहीं है
वह कहां मिलता है
इसका मुझे
पता नहीं है
बिना सुख लिये
हम वापस आ रहे थे
रास्ते में
एक भिखारिन
सीने में नन्हा बच्चा चिपकाये
माई से टकरा गई
बच्चे का नन्हा हाथ
माई के आगे
फैला दिया
माई की आंखें
भर आईं
नन्हें के हाथ पर
एक रुपया रख दिया
फिर मुझसे बोली
मुझे
बहुत सुख मिला
घर आने पर
आंसू की बूँदें
माई की आँखों से
झरने लगीं
थमने का नाम
नहीं ले रही थीं।
मैंने समझाया
इन्हीं आँसुओं से
करुणा का
जन्म होता है
इन्हीं आँसुओं ने
गदाधर को
ठाकुर रामकृष्ण का
रूप देकर
विश्व का मंगल किया है।

# रामकृष्ण मिशन की विश्व को देन

—विमला ठकार
डलहौजी, (हि० प्र०)

श्री रामकृष्णदेव थे वैज्ञानिक आत्मसाधना के प्रथम प्रवक्ता, सर्वधर्मसमभाव के प्रणेता, भूतमात्र में ईशतत्व की प्रतीति पाये हुए ब्रह्मवेत्ता।

१८७५ से १८८५ के बीच उस महापुरुष के पास एक प्रतिभाशाली, ब्रह्माजिज्ञासु, वैराग्यशाली युवक सत्संग करता रहा। ज्योत-से-ज्योत जले, वैसे युवक की चेतना ब्रह्मज्ञान से प्रज्वलित हुई।

अपने गुरुदेव की महासमाधि के पश्चात् वह युवक दस बारह गुरुभाइयों के साथ संन्यस्त जीवन जीने लगा। श्री रामकृष्ण मठ स्थापन हुआ।

भारत की परिव्रज्या एवं विश्वभ्रमण के बाद उस युवक ने—स्वामी विवेकानन्द ने—श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। मठों की मार्फत वैदिक संस्कृति के संस्कार दिलाकर संन्यासियों को प्रशिक्षित करने का कार्य शुरू हुआ। वैराग्य के नाम से जीवनविमुख बननेवाले पलायनवादी नहीं अपितु जीवन परायण संन्यासी! श्रमनिष्ठ समाजसेवी संन्यासी! भारत के असंख्य दरिद्रों की "नारायण" भाव से सेवा करनेवाले संन्यासी!

श्री रामकृष्ण मिशन के द्वारा प्रत्यक्ष सेवाकार्य अपनाये जाने लगे! वेदविद्या विभूषित, वैराग्य सम्पन्न, सेवा परायण संन्यासिओं को देखकर भारत अवाक् रह गया। एक नये युग का प्रारम्भ हुआ।

प्रशिक्षित, दीक्षित, मेधावी, संन्यासी संसार के अनेक देशों में पहुँचे। रामकृष्ण आश्रम स्थापित हुए। श्री रामकृष्ण परमहंस का नाम, छवि, उपदेश एवं स्वामी विवेकानन्द की तेजोमयी वाणी, विश्वभर में प्रचलित बने। "कृणवन्तु विश्वम् आर्यम्"—उक्ति सार्थक हुई।

अपने विश्वभ्रमण में उस दिव्य कार्य के पुनीत दर्शन करने का अहोभाग्य मुझे मिला। लॉस एंजेल्स के रामकृष्ण आश्रम में श्रद्धेय स्वामी प्रभवानंद जी के सान्निध्य का लाभ मिला। उनके व्यक्तित्व की एवं कार्य की खुशबू उत्तर अमेरिका भर में सुख्यात थी। स्वामी स्वाहानन्द जी का सौरभ सॅनफ्रॉन्सिस्को में देखा। लंडन तथा मॉरिसस के आश्रमों में जाने का सौभाग्य मिला। यूरोप में कभी स्विट्जरलैंड में तो कभी जर्मनी में श्रद्धेय रंगनाथानन्दजी के प्रेरणादायक भाषण सुने। कभी आस्ट्रेलिया में तो कभी श्री लंका में श्री रामकृष्ण मिशन का गरिमायुक्त कार्य देखने को मिला।

माउन्ट आबू में स्वामी जपानन्दजी का पावन सान्निध्य मिलता रहता। स्वामी भक्तानन्दजी का भी। पश्चिम बंगाल के गंगासागर क्षेत्र में स्वामी सम्बुद्धानन्द जी का अद्भुत कार्य देखा। भारत-भ्रमण में मैंने देखा कि हर प्रदेश में श्री रामकृष्ण मिशन की ज्योति प्रज्वलित है।

साहित्य के क्षेत्र में जो कार्य हुआ है वह भी अनुपम है। १९८३ की घटना है। अर्जेंटिना देश में सान मार्को नाम के एक छोटे से पहाड़ी गाँव में हमारा ध्यान शिविर चल रहा था। प्रशांत सौम्य मुखमुद्रा वाले एक सज्जन शाम की प्रार्थना सभा में हररोज शामिल रहते। एक दिन आग्रहपूर्वक मुझे अपने कुटीर पर ले गये। सानमार्को-एक रवीण में बसा हुआ प्यारा गांव! उसके एक छोर पर छोटा-सा कुटीर! आंगन में एक गाय खड़ी!

अन्दर प्रवेश करने पर अगरबत्ती की खुशबू आयी। अपने पूजा कक्ष में वह सज्जन मुझे ले गये। एक टेबल पर श्री रामकृष्ण देव का बड़ा-सा चित्र। पास में श्री शारदा देवी तथा स्वामी विवेकानन्द के छोटे चित्र! अलमारी में रामकृष्ण—विवेकानन्द का पूरा साहित्य तरतीब से रखा हुआ। हृदय भर आया। वह सज्जन मुस्कुरा के कहने लगा—"This is my Dakshineshwar! This is my Belur."

उनके पास आसपास के १० गाँवों के युवक सप्ताह में एक बार आते हैं। स्वाध्याय होता है। सामूहिक ध्यान होता है। अर्जेंटिना की कोर्दोवा युनिवर्सिटी में मिशन का साहित्य पहुँचा है। पोलंड की वॉर्सा युनिवर्सिटी में भी साहित्य विद्यार्थी जगत् में अत्यन्त प्रिय है।

श्री रामकृष्ण मिशन के द्वारा एक वैश्विक चेतना जगाई गई है। "आत्मन : मोक्षार्थं, सर्वजन-हिताय च" जीने की प्रेरणा देकर मानवीय जीवन के परम मंगल उद्देश्य का बोध कराया है।

# महातीर्थ बेलुड़ मठ

—मोहन सिंह मनराल

सुरईखेत, अल्मोड़ा

यह उस पावन सलिला ब्रह्मवारि गंगा का तट है जिसके किनारे भगवान् श्री रामकृष्णदेव ने अपनी दीर्घ साधना व सिद्धियों द्वारा इस युग में सतयुग की ऐसी भावधारा प्रवाहित की जो जग-प्लावन कर रही है। इसी स्थल से कुछ दूरी पर श्रीरामकृष्ण भक्तों के महातीर्थ बेलुड़ मठ में स्थित मातृमन्दिर की सीढ़ियों से स्पर्श करती गंगा का स्पर्श कर अगणित नर-नारी श्री माँ की करुणा राशि से अपना जीवन धन्य कर रहे हैं।

इस गंगा तट का महत्व ही अलग है क्योंकि यहाँ स्थित हैं माँ, वह माँ जो अपनी सन्तानों को धूल कीचड़ से झाड़-पोंछकर अपनी गोद में उठा रही हैं। शोक ताप उनका मिटा रही हैं और भुक्ति-मुक्ति मुक्तहस्त हो लुटा रही हैं। देश विदेश से सन्तानें खिंची आ रही हैं ऐसा ही अद्भुत नजारा है उस बेलुड़ मठ में जिसे स्वामी विवेकानन्द जी ने अपनी एकान्तिक गुरुभक्ति; अदम्य परिश्रम व प्रचण्ड इच्छाशक्ति से मूर्त रूप दिया था। जिसे संघ जननी प्रातः स्मरणीया श्री श्री माँ सारदा देवी ने अपनी अद्भुत अज्ञात साधना, तप व स्नेह से सींचा जिसे श्री ठाकुर के मानस पुत्र राजा महाराज पूजनीय स्वामी ब्रह्मानन्द व अन्य लीलापार्षदों की आध्यात्मिकता ने युगों-युगों तक कार्य संचालन व भाव प्रकाशन के योग्य बनाया था। आज इसी प्रदीप के आलोक में अँधियारा मिट रहा है। समस्त आकुल हृदयों को आशा व विश्वास का ध्रुवतारा दिख रहा है जो उनकी जीवन नौका को दिशा दे सकता है। तभी तो कोटि-कोटि सन्तानों का आश्रय व शरण स्थल बना है महातीर्थ बेलुड़।

साधना, संयम, त्याग व समर्पण का प्रतीक बेलुड़ मठ की पावन धरती पर कदम रखते ही अहसास होता है हम किसी ऐसे स्थान पर आ गये हैं जहाँ आने की इच्छा हमारे भीतर अज्ञात बनी हुई थी। हम समझ नहीं पा रहे थे कि हम चाहते क्या हैं। यहाँ आकर लगता है हम यही

चाहते थे। यहाँ आकर हम देखते हैं एक शान्ति; एक नीरवता और एक अहसास। ऐसा अहसास कि इस भूमि पर कोई ऐसा भाव, कोई ऐसी परम आत्मा निवास कर रही है जो सबके भीतर जीवन्त बनी है। इतना तो निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि यहाँ की पावन भूमि में पड़ने वाले हर कदम के साथ कहीं-न-कहीं कोई सौभाग्य, कोई सुकृति चल रही होती है जो उन्हें यहाँ खींच लाती है।

एक ऐसे स्थान पर जो धरती पर स्वर्ग के रूप में अनुभूत किया जा सकता है। जहाँ से वापस लौटने का मन नहीं होता है। जहाँ श्री ठाकुर (श्री रामकृष्णदेव) साक्षात् निवास कर रहे हैं। जहाँ वे पूज्य स्वामी जी (विवेकानन्द जी) के कन्धे पर चढ़कर अपना वचन पूरा कर रहे हैं। तू मुझे कन्धे पर उठाकर जहाँ भी रखेगा मैं वहीं रहूँगा। जहाँ श्री रामकृष्ण के दाहिने हाथ महान स्वामी जी ने अपना देह त्याग किया और आगे का कार्य श्री रामकृष्ण के लीला पार्षदों के सुपुर्द किया। जहाँ श्री रामकृष्ण की लीला सहधर्मिणी शक्तिरूपा श्री श्री माँ; श्री ठाकुर के मानसपुत्र स्वामी ब्रह्मानन्द, व अन्य लीला पार्षदों ने अपने शरीर त्याग कर नवयुग के इस तीर्थ को अपनी आध्यात्मिक ऊर्जाओं से युगों के लिए कार्योपयोगी बनाया।

इसी बेलुड़ मठ के गंगा तट पर खड़े होकर हमें दक्षिणेश्वर काली मन्दिर का शिखर दिखाई पड़ता है। दर्शन मात्र से श्री रामकृष्ण देव की उन लीलाओं का स्मरण हो आता है जो तीन दशकों तक इस स्थान पर अवतरित हुई थी। मानो उस समय यह साक्षात् कैलाश हो गया हो जहाँ शिवरूप श्रीरामकृष्ण आकर लीलारत हुए हों। और फिर अपने युगधर्म की प्रतिष्ठा कर उन्होंने भक्तों का संगठन किया तथा अपनी लीला संवरण भी बड़े अद्भुत तरीके से इसी स्थल से कुछ दूरी पर किया। भेष बदलकर आये राजा को अन्त तक कोई पहचान न पाये, क्या इसीलिये ?

पर अब तो पर्दा उठ गया है और अभिनय शुरू हो गया है। अब वे अपने को छिपाकर नहीं रख सकते हैं। तभी तो यहाँ देश विदेश से आने वालों का तांता लगा है। कोई एशिया-यूरोप से आ रहा तो कोई अमेरिका आस्ट्रेलिया से। कोई हिमालय से कोई कन्याकुमारी से। भक्तों में गृहस्थों की बड़ी संख्या है, और हो भी क्यों नहीं इन्हीं को सबसे अधिक आवश्यकता है। इन्हीं के लिए तो ठाकुर माँ का आना हुआ है। इन्हीं के लिए तो स्वामी जी को लाना हुआ है।

वे पवित्र और पुण्यात्माओं के सरताज हैं। ऐसी आत्माओं को तो यहाँ आना ही होगा। मगर उनका आगमन उनके ही अनुसार ऐसे जनों के लिए भी हुआ है जो सर्वथा इस योग्य नहीं हैं। वे तो यहाँ आकर उतना पा रहे हैं जितने के योग्य नहीं हैं। इन लोगों के लिये उन्होंने दारुण कष्ट सहे, अपनी शक्ति के जिम्मे इसी कार्य को सौंपते हुए वे बोले—'देखो, लोग अँधेरे में कीड़ों की तरह किलबिला रहे हैं, तुम उन्हें देखना।' इसी के लिए समाधि के आनन्द की अपेक्षा कर वे कर्म क्षेत्र में आकर खड़े हो गये हैं। इसीलिये वे अपने इस संगठन की स्थापना कर अपने कर्मियों के हृदय में मचल रहे हैं। पागल पथिक की तरह चल रहे हैं ताकि वह आलोक जला रहे जिसे वे आलोकित कर गये हैं। क्यों ? अपनी अकारण दया व करुणा के कारण। सभी जड़ चेतन उनकी सन्तान जो हैं। कौन उन्हें संभालेगा ? सिवाय उनके कौन उन्हें संभाल सकता है ?

तभी तो अगणित भक्तों, दीन दुखियों, आर्त मुमुक्षुओं और जिज्ञासुओं का हुजूम चला आ रहा है। पापी तापी, शुद्ध अशुद्ध, इन्सान शैतान सभी

तो आ रहे हैं चींटियों का दल जो थकने या थमने का नाम ही नहीं ले रहा और माँ की करुणा वारि से पवित्र हो रहा है। वह पूर्ण घट सभी घटों में समा रहा है मगर जरा भी रिक्त नहीं हो पा रहा है वरन् और अधिक छलकता चला जा रहा है। जय रामकृष्ण !!!

वर्तमान में श्री रामकृष्ण मठ एवं मिशन का मुख्यालय केन्द्र बेलुड़ मठ अपनी स्थापना की शताब्दी मना रहा है। आज से सौ वर्ष पूर्व सन् १८९८ ई० में बेलुड़ मठ की स्थापना स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा अथक परीश्रम व एकनिष्ठ गुरुभक्ति द्वारा की गई थी। ९ दिसम्बर १८९८ को उन्होंने अपने परम पूज्य गुरुदेव के पवित्र अस्थि-कलश (आत्माराम के पात्र) को अपने सर पर ढ़ोकर इस पवित्र तपोस्थली में प्रतिष्ठित किया था। उन्होंने घोषणा की थी इस स्थान से श्री रामकृष्ण ज्योति समग्र विश्व में फैल जायेगी।

२ जनवरी १८९९ से यह स्थान श्री रामकृष्ण संघ का प्रधान केन्द्र बन गया। तब से आज तक सौ वर्ष के अन्तराल में यह संगठन श्री रामकृष्ण की कृपा से विशाल वट वृक्ष की भाँति फैलता जा रहा है। इसकी शाखायें प्रशाखायें संसार ज्वाला से तप्त त्रस्त दुःखी मानवों को शान्ति प्रदान कर रही हैं। भटके हुए मुसाफिरों को राह सुझा रही है। भारत वर्ष के अलावा १२ से अधिक महत्व-पूर्ण देशों में इसकी कुल १४० से अधिक शाखायें (संघ केन्द्र) इस भावधारा के प्रसारण में लगी हैं जिसे युगावतार के युगनायक द्वारा एक अभिनव आध्यात्मिक क्रान्ति के रूप में विस्फोटित किया गया है।

## 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' :

युगनायक स्वामी विवेकानन्द अपने श्री गुरुदेव प्रातः स्मरणीय श्री श्री रामकृष्ण देव के श्री मुख से दक्षिणेश्वर की तपोभूमि में सुना था 'शिव ज्ञान से जीव सेवा।' मात्र इतने शब्दों में युग निर्माण का महामन्त्र छिपा था जिसे समझने की सामर्थ्य मात्र स्वामी जी में थी। उन्होंने इस मन्त्र में निहितार्थ का चिन्तन किया और गुरु कृपा से उनके आगे इसका रहस्य उद्घाटित हुआ। वे बोले यदि समय मिला, अवसर हुआ तो आज जो सुना, इस अद्भुत सत्य का संसार में सर्वत्र प्रचार करूँगा।

इस महामन्त्र से स्वामी जी ने सीखा था कि वन के वेदान्त को घर में लाया जा सकता है, संसार के सभी कार्यों में उसका प्रयोग किया जा सकता है। इसी मूल सत्य को आधार बनाकर उन्होंने श्री रामकृष्ण संघ का आदर्श वाक्य दिया—'आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च।' अपनी मुक्ति और जगत का कल्याण। इसी महामन्त्र की सिद्धि में लगा बेलुड़ अधिक समय तक अपने प्रिय स्वामी को संजोकर न रख सका। ४ जुलाई १९०२ ई० को इसी मठ में स्वामी जी ने देहत्याग किया मगर उनके जाने से कुछ भी थमा नहीं। वरन् वहीं से एक महाउदय हुआ। सूक्ष्म शरीर से वे अधिक सक्रिय हो उठे। उन्होंने अपने लीला संवरण से पूर्व स्वयं से कहा—यदि आज कोई दूसरा विवेकानन्द होता तो जान पाता कि विवेकानन्द ने क्या किया।

उन्होंने जो किया उनके गुरुभ्राताओं ने उस उत्तरदायित्व को वहन करते हुए आगे बढ़ाया। आज सम्पूर्ण विश्व उसका अति अल्पांश जान व देख रहा है और आगे भी देखेगा। इस गुरुत्तर दायित्व को उनके गुरुभाई व श्री रामकृष्ण के मानस पुत्र स्वामी ब्रह्मानन्द ने १९२२ ई० तक सफलतापूर्वक वहन किया। अपनी अतुल अध्यात्मिक अनुभूतियों से सज्जित कर उन्होंने संघ को एक ऐसी सुदृढ़ नींव प्रदान की जो समय की

चुनौतियों को सहजता से झेल रही है। भावधारा का प्रसारण सही अर्थों में हो रहा है।

संघजननी श्री श्री माँ सारदा देवी ने अपनी अज्ञात साधनाओं व अपार स्नेह से इसे जीवन्त बनाया जिससे माँ माँ की पुकार करते माँ के शत-शत वीर धीर व पवित्र पुत्रों ने अपने जीवन का उत्सर्ग किया और आज भी वह सिलसिला जारी है। वह माँ ही थी जिन्होंने गया धाम में बौद्ध मठों की सुव्यवस्था देख श्री ठाकुर से अपने बच्चों (सन्तानों) के लिये आश्रय की प्रार्थना की थी। जहाँ उनके लिये मोटे अन्न-वस्त्र का अभाव न रहे और वे उन्हें उनका पवित्र नाम सुना सकें जो उनके पास आयें। उसके बाद ही स्वामी जी ने मठ निर्माण का संकल्प लिया। श्री ठाकुर को श्री माँ की बात माननी पड़ी और उनकी सन्तानों का दर-दर भटकना बन्द हुआ।

स्वामी प्रेमानन्द (१९१८), श्री श्री माँ (१९२०) व श्री मत् स्वामी ब्रह्मानन्द (१९२३) की महासमाधि के उपरांत मठ का भार संभाला श्री ठाकुर जी के लीलापार्षद स्वामी शिवानन्द महाराज ने जिन्हें स्वामी जी ने महापुरुष की उपाधि से विभूषित किया था। १९३४ तक उन्होंने अपनी एकान्तिक गुरुभक्ति के बल पर मठ का गुरुत्तर भार वहन किया। तब से लेकर आज तक अनेक उच्च आध्यात्मिक पुरुषों ने इसका सफल संचालन किया है जिनमें स्वामी अखंडानन्द, स्वामी विज्ञानानन्द, स्वामी विरजानन्द व स्वामी वीरेश्वरानन्द प्रमुख रहे हैं। प्रत्येक मठ के संचालक, संरक्षक व सहायक द्वारा त्याग, तपस्या व उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों के आदर्श ने इस मठ इसी कारण आज कोटिशः भक्तों के हृदय मंदिर में बदल गया है। वर्तमान में मठ के अध्यक्ष है पूजनीय श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज। (क्रमशः)

---

( पृष्ठ २३ का शेष )

उत्पन्न कर रहे हैं। चुपचाप किन्तु अनिवार्य रूप से, ये उन लोगों के मानस को बदल रहे हैं जो उनके प्रभाव में आते हैं। ये उन लोगों के रूपान्तरण में उत्प्रेरक कारण की भाँति कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण जो भाव दे गये, वे किसी दिशा से संरक्षण के कारण नहीं बल्कि, अपनी अन्तर्निहित शक्ति के कारण, अब संसार के सुदूर कोनों में पहुँच रहे हैं। जिस दिन उनका आविर्भाव हुआ उसी दिन से मनुष्य के धार्मिक दृष्टिकोण में एक नया मोड़ आया है। यह वह वह मोड़ है जो एकता, शान्ति और धन्यता की ओर जाता है।

---

पवित्रता, दृढ़ता और उद्यम—ये तीनों ही गुण मैं एक साथ चाहता हूँ।

—स्वामी विवेकानन्द

# एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक<br>
**स्वामी सुबीरानन्द**<br>
सचिव<br>
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।
2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।